Kumaria) के विचार हैं कि, **"एक लोकतंत्रात्मक प्रशासन को चाहिए कि वह अपने अधीनस्थ सभी कर्मचारियों को सामाजिक रूप से अपने समान समझे तथा अपने आप स्वयं कोई निर्णय न लें। प्रशासक को निर्णय लेते समय अपने सहयोगियों की सहायता तथा सलाह लेनी चाहिए तथा उन्हें उनके दायित्वों के प्रति सचेत करना चाहिए। उसे अपने कर्मचारियों के अनुसार प्रशासन के नियमों का कठोरता से पालन करना चाहिए। जिस समय वह प्रशासन के नियमों को लागू करे उसे हर प्रकार के भेदभाव से बचना चाहिए तथा अपने किसी विशेषाधिकार का घमण्ड नहीं दिखाना चाहिए।"**

("A democratic administrator should look upon his personnel/workers as socially equal to himelf; he should not take decision by himself but with his colleagues, he should also make them feel responsible and share in his administration. He should have a code of set rules of administration which he and his colleagues should follow rigidly, making no discrimination in their application and lastly he should want no special privilege.")

2. अधिकार व दायित्व बाँटने का सिद्धांत (Principle of Distribution of Rights and Responsibilities)–जॉन डीवी (John Dewey) के अनुसार, **"दायित्व का बंटवारा ही लोकतंत्र है।"** (*"Division and distribution of responsibilities is Democracy."*)। वह शक्तियों के केन्द्रीकरण के खिलाफ थे तथा शक्तियों तथा दायित्वों के बंटवारे का हर संभव प्रयास करते थे। ठीक इसी प्रकार एक लोकतंत्रात्मक मुख्याध्यापक अपने आपको तानाशाह या बॉस (Boss) नहीं समझता। वह अपनी शक्तियों को दूसरे अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों को बाँट देता है। ऐसा करने से वह एक तरफ तो विद्यालय में प्रजातांत्रिक वातावरण (माहौल) पैदा करता है और साथ ही साथ अपने काम के बोझ को भी हल्का कर लेता है।

3. सहयोग का सिद्धांत (Principle of Co-operation)–विद्यालय एक संस्था है इसलिए यह एक व्यक्ति का काम नहीं है। इसे चलाने में भिन्न-भिन्न स्तर के लोगों की बुद्धि तथा अनुभव की आवश्यकता होती है। इसलिए विद्यालय में कार्यरत सभी कर्मचारियों को एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए। यदि प्रधानाचार्य, अध्यापकगण, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी तथा विद्यार्थी आपस में एक-दूसरे का सहयोग करें तथा अपने कर्त्तव्यों को ईमानदारी से निभाएँ तो वह विद्यालय वास्तविक रूप से उन्नति करेगा।

4. व्यक्तिगत योग्यता को प्रशंसा (Praise to Individual Talent)–लोकतंत्रात्मक शिक्षा प्रशासन में एक संस्था के सभी कर्मचारी बराबर होते हैं। मुख्याध्यापक सभी के साथ एक-सा बर्ताव करता है, परन्तु इसके उपरान्त भी वह प्रत्येक उस व्यक्ति को ज्यादा इज्जत व सम्मान देता है। जिसमें व्यक्तिगत गुण होते हैं और जो अपने इन विशेष गुणों को विद्यालय की प्रगति में लगाता है। वह प्रत्येक कर्मचारी के व्यक्तिगत गुणों के आधार पर ही उनको कार्य सौंपता है। इस संदर्भ में **रायबर्न (Ryburn)** के विचार हैं कि, **"अच्छे कार्य, सच्चे प्रयास तथा अच्छे गुणों की उत्साहवर्द्धक स्वीकृति से अधिक कोई भी वस्तु किसी भी मनुष्य–मर्द, औरत, लड़का, लड़की को अधिक प्रयास करने के लिए प्रोत्साहन नहीं दे सकती।"** (*"Nothing will encourage more a man or a woman, a boy or a girl to a greater effort than an encouraging recognition of good work done, of sincere effect made or good qualities shown."*)

5. स्वतंत्रता का सिद्धांत (Principle of Freedom)–लोकतंत्र में सभी व्यक्ति स्वतंत्र होते हैं, वे 'देश के अहित' को छोड़कर कोई भी कार्य बिना रोक-टोक के कर सकते हैं। इसलिए एक बढ़िया अधिकारी अपने अधीनस्थ सभी कर्मचारियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है जिससे वे सभी अपनी-अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकें। अध्यापक, कक्षा में पढ़ाते समय किसी भी शिक्षण-विधि को अपनाने में स्वतंत्र होता है यदि उसके परिणाम सकारात्मक हों। लोकतंत्रात्मक प्रणाली में अध्यापकों के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त होती है जो उनके व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है।

6. नेतृत्व का सिद्धांत (Principle of Leadership)–लोकतंत्रात्मक प्रशासन में हर कदम तथा स्तर पर नेतृत्व की आवश्यकता होती है। प्रधानाचार्य को सफल प्रशासन के माध्यम से अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में नेतृत्व के गुण विकसित करने चाहिए क्योंकि आज के विद्यार्थी कल के कर्णधार हैं।

नेतृत्व के सिद्धांत के विषय में **ब्रिग्ज तथा जस्टमैन (Briggs and Justman)** का कहना है कि, **"लोकतंत्रात्मक नेतृत्व सामूहिक चिन्तन को स्पष्ट करने तथा सामूहिक निर्णयों को कार्यान्वित करने की क्षमता है।"** (*"The concept of democratic leadership assumes the ability to take the initiative in crystallising group thinking and in translating group decision into action."*)

इन सभी सिद्धांतों के आधार पर यदि प्रशासन कार्य करता है तो वह सफल लोकतंत्रात्मक प्रशासन कहलाता है।

पी. सी. रैन (**P.C. Wren**) ने संगठन के जिन उद्देश्यों को निश्चित किया वे निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों की शक्तियों को प्रशिक्षित करना।
2. उनकी सौंदर्यानुभूति की शक्ति का विकास करना।
3. उनको हर दृष्टिकोण से लाभान्वित करने के लिए विद्यालय का उन्हें संगठित करना।
4. कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बनाने के लिए।
5. उनके शारीरिक विकास के लिए।
6. उनके व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए।
7. उनके चरित्र का निर्माण करने के लिए।
8. उनके मस्तिष्क के संपूर्ण विकास के लिए।
9. उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने के लिए।
10. उनमें नैतिकता विकसित करने के लिए।
11. उनके सर्वांगीण विकास के लिए।
12. उन्हें संपूर्ण नागरिक बनाने के लिए।

अधिगमकर्ता मित्रतापूर्ण वातावरण विकसित करने में विद्यालय समर्थन संगठनों की भूमिका

विद्यालय समर्थन संगठन वे संगठन होते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य विद्यालयों के कार्यों का सफल बनाने के लिए विद्यालयों को समर्थन या सहायता प्रदान करते हैं। सामुदायिक संगठन, (**Community Organisation**), अभिभावक अध्यापक समर्थन संगठन (**Parent Teacher Support Organisations**) तथा गैर सरकारी संगठन (**Non government Organisation**) या व्यक्तियों का समूह (**Groups of persons**) आदि विद्यालय समर्थन संगठन कहलाते हैं जिनका उद्देश्य विद्यालयों की कार्यप्रणाली को सुधारने के लिए सहायता या समर्थन देना होता है। अभिभावक अध्यापक समर्थन संगठन घर तथा विद्यालय परस्पर सूझ-बूझ बढ़ाने के लिए पर्याप्त सहायता प्रदान कर सकते हैं। इन संगठनों की समय-समय पर सभाएँ होती है तथा उनमें घर, स्कूल तथा विद्यार्थियों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है। इन संगठनों की समय-समय पर सभाएँ होती है तथा उनमें घर, स्कूल तथा विद्यार्थियों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है। इन संगठनों की बैठकों में पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ तथा बच्चों के लिए अनुकूल वातावरण के निर्माण आदि के सम्बन्ध में भी विचार-विमर्श किया जाता है। ऐसे संगठनों द्वारा मैत्री तथा सद्भावना को सशक्त करने के लिए प्रयास किया जाता है। विद्यालय शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए विद्यालय समर्थन संगठनों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। समाज एक महत्त्वपूर्ण समर्थन संगठन है जो विद्यालय की कार्यप्रणाली में सुधार लाने के लिए हर संभव प्रयास करता है।

स्कूल और कुछ नहीं, समाज का एक छोटा रूप है। स्कूल और समाज (समुदाय) की चर्चा करते हुए श्री टी. पी. नन् (**T. P. Nunn**) ने कहा है–**"हम कह सकते हैं कि राष्ट्र के स्कूल उसके जीवन के अंग हैं जिनका विशिष्ट कार्य है–उसकी आध्यात्मिक शक्ति को एकत्रित करना, उसकी ऐतिहासिक निरन्तरता को स्थापित करना, उसकी प्राचीन उपलब्धियों को सुरक्षित रखना और उसके भविष्य को निश्चित करना। अपने स्कूलों के द्वारा ही राष्ट्र उन स्थायी शक्तियों के प्रति सचेत हो सकता है जिनसे उसके जीवन के सर्वश्रेष्ठ आन्दोलन प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।"**

प्रो. के. जी. साइदायन (**Prof. K.G. Saiyidain**) के अनुसार, **"लोगों का स्कूल लोगों की आवश्यकताओं और समस्याओं पर आधारित होना चाहिए। उसका पाठ्यक्रम उनके जीवन का ही संग्रह हो। उसकी कार्यविधि अधिकांशतः उन्हीं के अनुरूप हो। यह सब उन बातों को प्रतिबिम्बित करें जो सामुदायिक जीवन के लिए विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण हो।"**

एक अच्छा स्कूल समुदाय पर और एक अच्छा समुदाय स्कूल पर आधारित होता है। दोनों अभिकरण एक-दूसरे के पूरक हैं या हम कह सकते हैं कि स्कूल और समुदाय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

इस प्रकार स्कूल और समुदाय में आपस में गहरा संबंध है।

समुदाय व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो इन्हें मिलाकर सामान्य उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए व सुखी जीवन के लिए एवं निश्चित स्थान पर रहते हैं। शिक्षा के द्वारा ही उद्देश्यों की प्राप्ति होती है और अनिवार्य स्थान के रूप में औपचारिक शिक्षा को केन्द्र बनाकर विद्यालय को माध्यम बनाया गया है। **माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission**

(1952-53) के शब्दों में **"हमारे विद्यालय समुदाय होंगे लेकिन वे छोटे-छोटे समुदाय होंगे और उनकी सफलता इसी बात पर निर्भर होगी कि किस रूप में उनके और बाहर के समाज के जीवन में निरन्तर रूप से सम्बन्धों की घनिष्टता की धारा बहती है।"** इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा का समुदाय से घनिष्ट संबंध है। शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से समाज की उन्नति और विकास होता है। शिक्षा ने अपने आपको और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए विद्यालयों का अपना उचित स्थान चुना है। इस प्रकार विद्यालय को समुदाय से अलग समझना एक नासमझी की बात होगी।

स्कूल-समुदाय के संबंध का महत्त्व *(Significance of Relationship between School and Community)*

(1) परम्परागत शिक्षा प्रणाली में विद्यालय एक ऐसा स्थान समझा जाता था जहाँ पर केवल अक्षर बोध कराया जाता था बच्चों को केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने पर ही बल दिया जाता था। अधिकतर प्रश्नों को रटने और परीक्षाओं पर बल दिया जाता था। स्कूल में सदा भय का वातावरण बना रहता था तथा विद्यार्थियों और विद्यार्थियों के बीच 'सौहार्द की कमी थी। स्कूल का दायित्व बहुत सीमित था लेकिन अब समुदाय में जागृति आ चुकी है व स्कूल "समुदाय स्कूल" के रूप में कार्य कर रहे हैं। शिक्षा सबके द्वारा ग्रहण की जाती है, इसलिए यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। विद्यालय समाज को कुछ इस प्रकार के निर्देश देता है कि जिससे नवयुवकों को इस प्रकार से प्रशिक्षित करें कि वह समाज में प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें। बच्चों को सामाजिक परम्पराएँ अपने अभिभावकों के द्वारा प्राप्त होती हैं, उनमें सामाजिक भावना जन्म से नहीं होती, वह उसे सीखते हैं। यदि बच्चों को सामाजिक परम्पराओं से अलग रखा जाये तो वे कुछ भी नहीं सीख पायेंगे। इस तरह से वह अविकसित मस्तिष्क द्वारा इधर-उधर बिना कुछ ग्रहण किए विचरित रहेंगे।

(2) विद्यालय इन कार्यों को बाहरी समाज की सहायता के साथ ही कर सकता है और सहायता भी तभी हो सकती है जबकि उनका आपस में गहरा संबंध होगा। परन्तु दुःख तब होता है जब हम यह देंखे कि आज भारतीय विद्यालय सामुदायिक जीवन की कोई सहायता नहीं करते हैं। अगर विद्यालयों को एक सामाजिक रूप में प्रयोग में लाना है तो सामुदायिक विद्यालयों के रूप में अवश्य काम करना होगा।

अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि विद्यालय समर्थन संगठन वे संगठन होते हैं जो विद्यालयों की कार्यप्रणाली में सुधार लाने के लिए विद्यालयों को सहायता या समर्थन देते हैं।

◆◆◆

17. बच्चों की शिक्षा को उन्नत करने के लिए गृह व विद्यालय के सहयोग की विवेचना करें।
(Discuss home-school partnership for better education of the children)

अथवा

'परिवार-विद्यालय सहभागिता' विषय पर निबन्ध लिखिए।
(Write an essay on 'family-school partnership.')

अथवा

विद्यालय व परिवार में सहभागिता विकसित करने के उपायों का वर्णन कीजिए।
(Describe the measures of developing home-school partnership.)

उत्तर–शिक्षा की संस्थाओं में विद्यालय एवं परिवार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय यदि औपचारिक शिक्षा संस्था है तो परिवार अनौपचारिक। बच्चों में जिन संस्कारों की नींव रखने का कार्य परिवार करता है विद्यालय उन्हें सुदृढ बनाते हैं तथा विद्यालय जो कुछ ज्ञान बच्चों को देते हैं परिवार उसके लिए प्रयोगशाला की भूमिका निभाते हैं। स्पष्ट है कि भले ही एक शिक्षा संस्था के रूप में विद्यालय एवं परिवार दोनों का एक विशिष्ट स्थान है पर एक प्रभावशाली शिक्षा संस्था के रूप में अपने दायित्व का अच्छी प्रकार से निर्वाह करने के लिए दोनों को एक दूसरे का सहयोग अपेक्षित है।

विद्यालय व परिवार में सहयोग (Home - school partnership)–इसका अर्थ है कि शैक्षिक कार्य करने में विद्यालय परिवार के साथ सहयोग करे और परिवार विद्यालय के साथ। ऐसा इसलिए आवश्यक है ताकि शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किया जा सके।

-53) के शब्दों में **"हमारे विद्यालय समुदाय होंगे लेकिन वे छोटे-छोटे समुदाय होंगे और उनकी सफलता इसी बात पर निर्भर** के किस रूप में उनके और बाहर के समाज के जीवन में निरन्तर रूप से सम्बन्धों की घनिष्टता की धारा बहती है।" इस न देखते हैं कि शिक्षा का समुदाय से घनिष्ट संबंध है। शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से समाज ति और विकास होता है। शिक्षा ने अपने आपको और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए विद्यालयों का अपना उचित ना है। इस प्रकार विद्यालय को समुदाय से अलग समझना एक नासमझी की बात होगी।

मुदाय के संबंध का महत्त्व *(Significance of Relationship between School and Community)*

(1) परम्परागत शिक्षा प्रणाली में विद्यालय एक ऐसा स्थान समझा जाता था जहाँ पर केवल अक्षर बोध कराया जाता था को केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने पर ही बल दिया जाता था। अधिकतर प्रश्नों को रटने और परीक्षाओं पर बल दिया ता। स्कूल में सदा भय का वातावरण बना रहता था तथा विद्यार्थियों और विद्यार्थियों के बीच 'सौहार्द की कमी थी। स्कूल त्र बहुत सीमित था लेकिन अब समुदाय में जागृति आ चुकी है व स्कूल "समुदाय स्कूल" के रूप में कार्य कर रहे हैं। बके द्वारा ग्रहण की जाती है, इसलिए यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। विद्यालय समाज को कुछ इस प्रकार के निर्देश कि जिससे नवयुवकों को इस प्रकार से प्रशिक्षित करें कि वह समाज में प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें। बच्चों को क परम्पराएँ अपने अभिभावकों के द्वारा प्राप्त होती हैं, उनमें सामाजिक भावना जन्म से नहीं होती, वह उसे सीखते हैं। चों को सामाजिक परम्पराओं से अलग रखा जाये तो वे कुछ भी नहीं सीख पायेंगे। इस तरह से वह अविकसित मस्तिष्क र-उधर बिना कुछ ग्रहण किए विचरित रहेंगे।

(2) विद्यालय इन कार्यों को बाहरी समाज की सहायता के साथ ही कर सकता है और सहायता भी तभी हो सकती है उनका आपस में गहरा संबंध होगा। परन्तु दुःख तब होता है जब हम यह देखे कि आज भारतीय विद्यालय सामुदायिक की कोई सहायता नहीं करते हैं। अगर विद्यालयों को एक सामाजिक रूप में प्रयोग में लाना है तो सामुदायिक विद्यालयों में अवश्य काम करना होगा।

अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि विद्यालय समर्थन संगठन वे संगठन होते हैं जो विद्यालयों की कार्यप्रणाली र लाने के लिए विद्यालयों को सहायता या समर्थन देते हैं।

◆◆◆

बच्चों की शिक्षा को उन्नत करने के लिए गृह व विद्यालय के सहयोग की विवेचना करें।
(Discuss home-school partnership for better education of the children)

अथवा

'परिवार-विद्यालय सहभागिता' विषय पर निबन्ध लिखिए।
(Write an essay on 'family-school partnership.')

अथवा

विद्यालय व परिवार में सहभागिता विकसित करने के उपायों का वर्णन कीजिए।
(Describe the measures of developing home-school partnership.)

उत्तर–शिक्षा की संस्थाओं में विद्यालय एवं परिवार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय यदि औपचारिक शिक्षा संस्था है वार अनौपचारिक। बच्चों में जिन संस्कारों की नींव रखने का कार्य परिवार करता है विद्यालय उन्हें सुदृढ बनाते हैं तथा य जो कुछ ज्ञान बच्चों को देते हैं परिवार उसके लिए प्रयोगशाला की भूमिका निभाते हैं। स्पष्ट है कि भले ही एक शिक्षा के रूप में विद्यालय एवं परिवार दोनों का एक विशिष्ट स्थान है पर एक प्रभावशाली शिक्षा संस्था के रूप में अपने दायित्व च्छी प्रकार से निर्वाह करने के लिए दोनों को एक दूसरे का सहयोग अपेक्षित है।

विद्यालय व परिवार में सहयोग (Home - school partnership)–इसका अर्थ है कि शैक्षिक कार्य करने में य परिवार के साथ सहयोग करे और परिवार विद्यालय के साथ। ऐसा इसलिए आवश्यक है ताकि शिक्षा के उद्देश्यों को ाली ढंग से प्राप्त किया जा सके।

इन दोनों में परस्पर सहयोग के दो रूप हो सकते हैं–

(1) घर व विद्यालय के सहयोग में विद्यालय की भूमिका
(Role of school in home-school partnership)

(2) घर व विद्यालय के सहयोग में परिवार की भूमिका
(Role of family in home-school partnership)

(1) घर व विद्यालय के सहयोग में विद्यालय की भूमिका (Role of school in home-school partnership)

(i) अभिभावक दिवस मनाना–वर्ष में एक बार विद्यालयों में अभिभावक दिवस मनाया जाना चाहिए। इस अवसर पर अध्यापक व अभिभावक मिलकर बच्चों की प्रगति के विषय में चर्चा कर सकते हैं। यह भी विचार किया जा सकता है इस विषय में और क्या किया जा सकता है तथा इस सन्दर्भ में परिवार की क्या भूमिका हो सकती है।

(ii) अध्यापक-अभिभावक संघ बनाना (To form teacher parent association)– अध्यापक अभिभावक संघों का गठन कर समय-समय पर इनकी मीटिंग बुलाई जानी चाहिए। ये संघ मिलकर विद्यालय के शैक्षिक स्तर में सुधार के लिए प्रयत्न कर सकते हैं।

(iii) अभिभावक सम्पर्क (Contact with parents)–अध्यापकों के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वे महीने में एक बार अपनी कक्षा के सभी विद्यार्थियों के घर जाएँ और उनसे बच्चे की प्रगति व उससे जुड़ी समस्याओं पर विचार-विमर्श करें। इससे अभिभावक विद्यालय की गतिविधियों में रुचि लेंगे।

(iv) बच्चों की डायरी का उपयोग करना (To make use of the diary of children)–प्रत्येक बच्चे के पास एक डायरी होती है। अध्यापक जब भी आवश्यक हो उसमें बच्चे से सम्बद्ध समस्या, उसकी कक्षा में स्थिति या उसके समग्र व्यवहार से सम्बन्धित रिपोर्ट लिखकर बच्चे के घर भेज सकता है। इससे अध्यापक व अभिभावक मिलकर बच्चे के सर्वांगीण व अधिकतम विकास के लिए प्रयत्न कर सकते हैं।

(v) विद्यालय समारोहों में अभिभावकों को आमन्त्रित करना (To invite parents in school functions)–विद्यालय में होने वाले वार्षिक समारोह व अन्य कार्यक्रमों में अभिभावकों को आमन्त्रित किया जाना चाहिए। इससे वे इन गतिविधियों के महत्त्व को समझेंगे व अपने बच्चों को भी इनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

घर व विद्यालय के सहयोग में घर की भूमिका (Role of family in home-shcool partnership)–इस सन्दर्भ में परिवार की निम्नलिखित भूमिका हो सकती है–

(i) अभिभावक बच्चों की शिक्षा में रूचि लें (Parents should take interest in education of children)–प्रायः देखा जाता है कि माता-पिता बच्चे का विद्यालय में प्रवेश करवा निश्चिन्त हो जाते हैं तथा उसकी शिक्षा में कोई रुचि नहीं लेते। ऐसा नहीं होना चाहिए। अभिभावकों को चाहिए कि वे ध्यान दें कि उनके बच्चे विद्यालय में जाकर क्या सीख रहे हैं। उनकी प्रगति सन्तोषजनक है या नहीं। यदि नहीं है तो इस सन्दर्भ में अध्यापकों से सम्पर्क करें।

(ii) बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करना (To fulfil educational needs of the children)–बच्चों का शैक्षिक कार्य अच्छी प्रकार से चलता रहे इसके लिए अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दें तथा उन्हें पुस्तक, कलम, कॉपी व अन्य वस्तुएँ समय पर उपलब्ध करवाते रहें।

(iii) अध्यापकों से सम्पर्क (Contact with teachers)–अभिभावक बच्चों के अध्यापकों से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखें और उनसे बच्चे की कक्षा में स्थिति व व्यवहार के विषय में विचार-विमर्श करते रहें जिससे उससे सम्बन्धित समस्या का उचित समाधान निकाला जा सके।

(iv) स्कूल डायरी नियमित रूप से देखना (To see school diary regularly)– अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों की डायरी प्रतिदिन देखें जिससे यदि अध्यापक ने कुछ लिखकर भेजा है तो उस सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही की जा सके।

(v) सहगामी गतिविधियों का महत्त्व समझना (To understand the importane of co-curricular activities)–प्रायः अभिभावक सहगामी गतिविधियों में भाग लेना समय को खराब करना समझते हैं। उन्हें चाहिए कि वे बच्चे की प्रतिभा के बहुमुखी विकास में इनके महत्त्व को समझें व उसे अधिक से अधिक इनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें।

(vi) अध्यापकों का सम्मान करना (To give respect to the teachers)–प्रायः देखा जाता है कि माता-पिता बच्चों के सामने ही उनके अध्यापकों की बुराई करते रहते हैं। इससे बच्चों के मन में भी अध्यापक के प्रति आदर भाव समाप्त हो जाता है और वे अध्यापक से कुछ सीख नहीं पाते। अभिभावक बच्चों में विनम्रता का भाव पैदा करें। उन्हें बड़ों का आदर करना सिखाएँ। यदि अभिभावकों को अध्यापक से कोई शिकायत है तो इस सन्दर्भ में वे उनसे सीधे ही बातचीत कर सकते हैं।

(vii) स्कूल रिपोर्ट को महत्त्व देना (To give importance to school report)–विद्यालय से यदि बच्चे के [illegible] में किसी भी प्रकार की रिपोर्ट प्राप्त होती है तो अभिभावकों को उसे गम्भीरता से लेना चाहिए तथा इस सन्दर्भ में तुरन्त [illegible] कदम उठाना चाहिए।

(viii) बच्चों से विद्यालय विषयक बातचीत करना (To talk to the children about their school)–[illegible]कों को चाहिए कि उन्हें जब भी समय मिले वे बच्चों के साथ उनकी विद्यालय की दिन-भर की गतिविधियों, उनके [illegible]कों व मित्रों के विषय में बातचीत करें। इससे यह समझने में मदद मिलती है कि बच्चा विद्यालय में खुश है अथवा नहीं। [illegible] किन-किन बातों को वह नापसन्द करता है। बच्चे से मिली यह सारी जानकारी विद्यालय की कार्य-प्रणाली को सुधारने [illegible] सहायक सिद्ध हो सकती है।

(ix) बच्चों की उत्तर पुस्तिकाएँ देखना (To see copies of children)–अभिभावक बच्चों की कापियों को भी [illegible] देखते रहें कि उनकी नियमित जाँच की जा रही है अथवा नहीं। कापियाँ अच्छी प्रकार से संशोधित की जा रही हैं अथवा [illegible] इससे वे अध्यापकों को इस विषय में अपने सुझावों से अवगत करा सकेंगे।

(x) बच्चों की शैक्षिक समस्याओं पर ध्यान दें (To pay attention on educational problems of the children)–कई बार बीमारी के कारण विद्यालय में अनुपस्थित रहने अथवा अन्य कारणों से बच्चा किसी एक या अधिक [illegible] में पिछड़ जाता है। माता-पिता को इस ओर तुरन्त ध्यान देते हुए बच्चे के लिए किसी प्राइवेट प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी [illegible] अथवा अध्यापक से मिलकर उनसे बच्चे की मदद के लिए अनुरोध करना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion)–अन्त में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर विद्यालय व परिवार [illegible] सहभागिता को बढ़ाया जा सकता है जिससे विद्यालय अपने शैक्षिक दायित्वों का निर्वहन अधिक अच्छी प्रकार से कर सके तथा [illegible] की अन्तर्निहित क्षमताओं को अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान कर उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके।

◆◆◆

2.7 पाठ्यक्रम क्रियान्वयन के कार्यस्थल के रूप में विद्यालय (School a Site of Curricular Engagement)

[illegible]. पाठ्यक्रम क्रियान्वयन में कार्यस्थल के रूप में विद्यालय का वर्णन कीजिए।

उत्तर–स्कूल एक प्रकार की शैक्षिक संस्था है और प्रबन्ध वह साधन है जिसके द्वारा किसी संगठन या संस्था का सुचारु [illegible] से संचालन किया जाता है चाहे वह संगठन शैक्षिक, शासकीय, सामुदायिक, धार्मिक अथवा समाजसेवी हो। इससे स्पष्ट [illegible] है कि प्रबन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्तियों के समूह और उनकी गतिविधियों से सम्बंधित होता है। प्रबन्ध की सभी [illegible]याओं का सारांश यह है कि प्रबन्ध व्यक्तियों के समूह से सम्बन्ध रखने तथा उनकी क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने में [illegible]पूर्ण भूमिका निभाता है। इस लिये प्रबन्ध का सम्बन्ध किसी संस्था या संगठन के अन्तर्गत काम करने वालों तथा उनकी [illegible]ओं के समन्वय से रहता है। स्कूल प्रबन्ध का सम्बन्ध मुख्य रूप से स्कूल की प्रबन्धक कमेटी, स्कूल के नेता अर्थात् स्कूल [illegible] मुख्याध्यापक और उसके नेतृत्त्व में काम करने वाले शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों और इसके साथ ही साथ शिक्षा प्रक्रिया [illegible] सुचारु रूप से चलाने वाली भौतिक सामग्री से होता है। स्कूल में स्कूल के नेता को प्रबन्धक का कार्य भार सौंपा जाता है [illegible] वह अपने साथियों की सहायता से स्कूल के प्रतिदिन के कार्यक्रमों और क्रियाओं के संचालन हेतु और निर्धारित उद्देश्यों की [illegible] के लिए प्रशासकीय कर्तव्यों को निभाता है। प्रजातन्त्र इस बात में विश्वास करता है कि स्कूल प्रबन्ध में स्कूल के नेता व [illegible]न्धक को स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये ताकि वे स्वतन्त्र रूप से पहल कदमी करके शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु [illegible]-चढ़ कर प्रयास कर सकें। भारत में जब लोकतन्त्रीय प्रणाली स्थापित हो चुकी है तो आवश्यक हो जाता है कि स्कूलों के [illegible] व प्रधानाध्यापक को पाठ्यक्रम पाठ्य पुस्तक, पाठ्य विधि आदि विषयों के सम्बन्ध में चयन हेतु और क्रियान्वित करने की [illegible]न्त्रता होनी चाहिये। अगर प्रबन्धक को इस प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी तो वह स्कूल प्रबन्ध की आन्तरिक व्यवस्था में [illegible]तन्त्रीय दृष्टिकोण को अपनायेगा।

शैक्षिक प्रबन्धक अथवा स्कूल प्रबन्ध के कार्य (Functions of Educational Management or School Management)—प्रबन्धक को शिक्षा के क्षेत्र में अनेक कार्यों की व्यवस्था करनी पड़ती है। शिक्षा के क्षेत्र में लाखों शिक्षक, मुख्याध्यापक, प्रिंसिपल, निरीक्षक तथा कर्मचारी कार्य करते हैं अतः प्रत्येक राष्ट्र अपनी सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का 20 से 30% या इससे भी ज्यादा शिक्षा पर खर्च करते हैं।

शिक्षा प्रबन्धक के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन सामग्री (Curriculum and Instructional Material)
(ii) वित्त (Finance)
(iii) विद्यार्थियों से सम्बन्धित सेवाएँ (Student Personal Services)
(iv) विद्यालय तथा समाज का सम्बन्ध (School and Community Relations)
(v) अध्यापकों के विकास सम्बन्धी सेवाएँ (Staff Development Services)

पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन सामग्री *(Curriculum and Instructional Material)*

पाठ्यक्रम का अर्थ (Meaning of Curriculum)–Curriculum शब्द लैटिन भाषा के Currere से लिया गया है जिसका अर्थ है दौड़ना अतः Curriculum का अर्थ हुआ "वह मार्ग जिस पर चलकर व्यक्ति अपनी मंजिल पर पहुँचता है।"

कनिघम के मतानुसार–"पाठ्यक्रम कलाकार (अध्यापक) के हाथ में एक ऐसा साधन है जिससे वह अपने स्टूडियों (स्कूल) में अपनी सामग्री (छात्र) को अपने आदर्शों (लक्ष्यों तथा उद्देश्यों) के अनुसार ढालता है।"

अतः अनुदेशन सामग्री वह सामग्री है जो विद्यार्थी को अपना पाठ्यक्रम पूरा करने में सहायता करती है। शिक्षा प्रबन्धक का यह कर्तव्य बनता है कि वह शिक्षा के उद्देश्यों का पता लगा कर उन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु उससे सम्बन्धित विषय सामग्री तथा अनुदेशन सामग्री को विकसित करने का यत्न करे।

प्रबन्धक को पाठ्यक्रम की आवश्यकता तथा महत्त्व का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए क्योंकि किसी विद्वान ने कहा है–**"समुचित आधार पर शैक्षिक प्रयासों के संगठन में पाठ्यक्रम केन्द्रीय बिन्दु का कार्य करता है निश्चय ही यह विद्यालय तथा उन सब कार्यों का जो इसमें होते हैं, हृदय है।"** ("Curriculum acts as a pivot in oganizing educational efforts on some manageable basis and is undoubtedly the heart of, the school and all that goes with it.")

प्रबन्धक को निम्न बातों का ज्ञान होना चाहिए–

1. शिक्षण सामग्री का निर्धारण पाठ्यक्रम ही करता है इसके बिना शिक्षण प्रक्रिया दृष्टिहीन हो सकती है क्योंकि इसके अभाव में यह नहीं जाना जा सकता कि क्या पढ़ाया जाए।
2. शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु पाठ्यक्रम एक साधन है।
3. विभिन्न स्तरों के अनुसार कैसी विषय-सामग्री होनी चाहिए इसका निर्धारण पाठ्यक्रम करता है।
4. उचित शिक्षा विधि की जानकारी होना शिक्षक के लिए बहुत जरूरी है। पाठ्यक्रम के न होने पर यह नहीं जाना जा सकता कि विषय-वस्तु कैसे पढ़ाई जाएँ और किन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाए।

पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन सामग्री का प्रशासन *(Administration of Curriculum and Instruction)*

शिक्षा प्रशासन के गठन का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को उचित, उपयोगी पाठ्यक्रम प्रदान कर ऐसी प्रभावी शैक्षणिक स्थितियों को निर्मित किया जाए जो बालकों के लिए लाभकारी हो।

गराइडर तथा रोसेनस्टेनगल ने तभी तो कहा है–"The curriculum comprising the ordered content of what is what, the experiences which children have under school auspices and instructional services, is the end of administration."

अतः शिक्षा प्रशासन का सर्वप्रथम कार्य शैक्षिक उद्देश्यों को निश्चित करना है तथा फिर उन उद्देश्यों को प्राप्ति हेतु पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन सामग्री का निर्माण करना है। प्रबन्ध का कार्य ये भी होता है कि किन विषयों को पाठ्यक्रम में रखा जाए तथा कौन-से स्तर पर किस शिक्षण विधि का प्रयोग किया जाए। कुछ परम्परागत विचारधारा को मानने वाले व्यक्ति मानते

कि पाठ्यक्रम तथा शैक्षणिक गतिविधियों में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है जबकि आधुनिक विचारधारा वाले मानते हैं कि समयानुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाना चाहिए। अतः प्रबन्धक को इन सभी तर्कों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तर का पाठ्यक्रम निर्मित करने से पहले के विषय में जानकारी होनी चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण (Clarity of Educational Goals)–शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट तथा सरल होने चाहिए। ये उद्देश्य ऐसे होने चाहिएं जिन्हें प्राप्त किया जा सके तथा जो समाज देश तथा संस्कृति के अनुकूल हों। उदाहरणार्थ भारत के संविधान में यह स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि हम प्रजातन्त्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण करेंगे। अतः हमें हमारी शिक्षा में ऐसा पाठ्यक्रम बनाना पड़ेगा जो इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हो।

शिक्षा उद्देश्यों को अनुदेशन प्रणाली के अनुरूप क्रियान्वित करना (Translation of educational goals into instructional system)–प्रबन्धक को पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा के उद्देश्यों को अनुदेशन प्रणाली में कार्यान्वित किया जाए। केवल उन्हीं विषयों को शिक्षा में लगवाना चाहिए जो शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक पाठ्यक्रम में अनेक प्रकार के विकल्प विषयों की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि छात्र अपनी रुचि अनुसार विषय का चयन कर सकें।

ई. डब्लू. ईजनर (E. W. Eisner) ने पाठ्यक्रम के भिन्न-भिन्न प्रत्ययों को 5 अलग-अलग समूहों में रखा है–

(i) संज्ञानात्मक प्रक्रिया अथवा प्रणाली (Cognitive Process)
(ii) शैक्षिक तर्कणावाद (Academic Rationalism)
(iii) व्यक्तिगत सम्बद्धता (Personal Relevance)
(iv) सामाजिक अनुकूलन एवं पुनर्निमाण (Social Adaptiation and Reconstruction)
(v) पाठ्यक्रम तकनीकी के रूप में (Curriculum as Technology)

अगर अनुदेशन के उद्देश्य सही ढंग से बनाये गए हों तो वे प्रबन्ध तथा अध्यापक को एक निश्चित पाठ्यक्रम को चुनने में सहायता करते हैं। भारत में NCERT (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद्) इस क्षेत्र में कार्य कर रही है।

पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन का आयोजन (Organisation of Instruction or curriculum)–शैक्षिक प्रबन्धकों को समय की माँग के अनुसार ही भिन्न-भिन्न स्तर पर पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन की व्यवस्था करनी चाहिए। ऐसे करते समय राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर की संस्थाओं की सहायता भी ली जा सकती है। राज्य स्तर पर पाठ्यक्रम को निर्मित करते समय राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (SCERT), राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (State Board of Secondary Education) अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र (Teacher Training Institute) आदि संस्थाओं से सहायता ले सकते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर (NCERT) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् की सहायता ली जा सकती है तथा समय की आवश्कयताओं के अनुसार पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन का निर्माण नवीन ढंग से किया जा सकता है।

अनुदेशन कार्यक्रमों के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करना (Providing necessary support for Instructional Programmes)—किसी भी तरह की शिक्षा व्यवस्था को सफल बनाने के लिए उसे उचित वातावरण देना आवश्यक है। जैसे यदि एक छोटे पौधे को हम सही खाद पानी देते हैं तो वह शीघ्र पनप कर बड़े पेड़ का रूप धारण कर लेता है ठीक उसी प्रकार यदि हम अनुदेशन कार्य को सफल तथा पनपता हुआ, आगे बढ़ता हुआ देखना चाहते हैं तो उसके लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध करवानी चाहिए। जैसे एक अच्छे अनुदेशन कार्यक्रम के अन्तर्गत हमें प्रत्येक शैक्षिक संस्था को, शिक्षण अधिगम सम्बन्धित सभी प्रकार की सहायक सामग्री जैसे व्यवस्थित कक्षा कक्ष, प्रशिक्षित अध्यापक, आवश्यक दृश्य-श्रव्य सामग्री आदि उपलब्ध करवानी चाहिए ताकि अनुदेशन की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाया जा सके। अनुदेशन की प्रक्रिया के निरीक्षण हेतु योग्य निरीक्षण अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए। निरीक्षण अधिकारी ऐसे हों जो अनुदेशन व्यवस्था को भली-भाँति समझते हों तथा जो कार्यरत अध्यापकों को उचित निर्देश दे सकें। शिक्षा प्रबन्धक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह निर्देशन का मूल्यांकन भी करे ताकि यदि उसमें जो त्रुटियाँ हों उनको दूर किया जा सके। शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों जैसे शैक्षिक विशेषज्ञ अध्यापक, अभिभावक तथा विद्यार्थियों की इसके लिए सहायता ली जा सकती है। इनके द्वारा दिये गए सुझावों को आधार मानकर पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन प्रक्रिया में सुधार किया जा सकता है।

◆◆◆

2.8 अध्यापक की स्वायतता तथा व्यावसायिक स्वतन्त्रता (Teacher's Autonomy and Professional Independence)

19. अध्यापक की व्यावसायिक नीतिशास्त्र से आप क्या समझते हैं? अध्यापक की स्वायतता तथा व्यावसायिक स्वतन्त्रता का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by professional ethics for teacher? Describe Teacher's autonomy and professional independence.)

उत्तर–(I) अध्यापक (The Teacher)–अध्यापक शिक्षण-अधिगम पद्धति के केन्द्र बिन्दु है। इतिहास का वास्तविक निर्माता अध्यापक होता है, वह हमारे भविष्य का रखवाला व निर्माता होता है। मनु ने अध्यापक को ब्रह्मा का रूप माना है। एक भारतीय प्रार्थना के अनुसार गुरु ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है; हमें अपने देश के लिए अच्छे एवं प्रभावात्मक अध्यापक चाहिए।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) के विचार इस प्रकार हैं–

"शिक्षा को गुणात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सभी विभिन्न तत्त्वों में अध्यापक के गुण, कुशलता एवं चरित्र का स्थान निस्संदेह सर्वोपरि है।"

(Of all the different factors which influence the quality of education and its contribution to material development, the quality, competence and character of teacher are undoubtly the most significant.)

(II) प्रभावात्मक अध्यापक (Effective teacher)–एक प्रभावात्मक अध्यापक को किसी विवशता के कारण शिक्षण-व्यवसाय में प्रवेश नहीं करना चाहिए बल्कि उसे अपनी रुचियों और प्रवृत्तियों के आधार पर ऐसा करना चाहिए। तभी वह इस व्यवसाय में नाम कमा सकता है।

प्रभावी शिक्षण में शिक्षक पढ़ाते समय उचित भाषा का प्रयोग करता है व श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग करता है जिससे कि शिक्षण को रुचिकर व प्रभावी बनाया जा सके। प्रभावी शिक्षण को प्राप्त करने के लिए उचित प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिए शिक्षण आजकल व्यवसाय का रूप ले रहा है। आजकल शिक्षण को व्यवसाय का दर्जा दिया जा रहा है, लेकिन कुछ लोग अभी भी इसे पेशा कहते हैं। क्या शिक्षण पेशा है या व्यवसाय? यह तथ्य विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न रूप से विवेचित किया जाता है।

(III) शिक्षण एक व्यवसाय के रूप में (Teaching as a profession)–यू. एस. ए. की राष्ट्रीय शिक्षा संघ के अनुसार शिक्षण व्यवसाय की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(1) यह उन गतिविधियों को लेता है। जो बौद्धिक स्तर की हों।
(2) यह विशिष्ट ज्ञान की ओर प्रेरित करता है।
(3) यह व्यवसाय की तैयारी को प्रसारित करता है।
(4) यह निरंतर सेवाकालीन विकास की मांग करता है।
(5) यह भविष्य बनाने में और स्थायी सदस्यता प्रदान करता है।
(6) यह अपने प्रमाण स्थापित करता है।
(7) यह व्यक्तिगत लाभ से ऊपर की सेवाएँ प्रदान करता है।
(8) यह व्यवसाय के संगठन को मजबूती प्रदान करता है।
(9) यह व्यवसाय अध्यापकों की रुचियों एवं नीतिशास्त्र के स्तर को सुधारने में मदद करता है।

आर्नस्टीन एवं मिलर (Ornstein and Miller) शिक्षण परिपूर्ण रूप से व्यवसाय नहीं है। यह एक व्यवसाय के अंतर्गत आने वाली सभी विशेषताओं को नहीं रखता जो एक व्यवसाय में होनी चाहिए। एक अध्यापक अपने संपूर्ण जीवन में अध्यापक ही रहता है। उसे अभी भी अपने कार्य के प्रति उत्तरदायित्व विकसित करने की आवश्यकता है। शक्तिशाली अध्यापक संगठनों को शैक्षिक स्तरों को सुधारने की एवं प्रतिपादित करने की अभी भी जरूरत है।

शिक्षण को व्यवसाय के रूप में लेने के लिए निम्नलिखित मुश्किलें हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) व्यावसायिक तैयारी की सही मात्रा में कमी।
(2) उचित पब्लिक पहचान की कमी।

(3) व्यवसाय विकास के लिए उचित प्रयासों की कमी।
(4) व्यवसाय संगठनों की कमी।
(5) कम कमाई।
(6) एक वास्तविक विज्ञान के रूप में साईंस की शिक्षा का अविकसित रूप।

तो भी, शिक्षण को व्यवसाय के रूप में लेना क्यों उचित है? इसकी व्याख्या इस प्रकार है–

(1) शिक्षण के सुपरिभाषित विभिन्न कार्य है, इसकी सुपरिभाषित प्रकृति व महत्त्व है।
(2) शिक्षण का अपना दर्शनशास्त्र है। भारत में यह लोकतांत्रिक शिक्षा दर्शनशास्त्र है।
(3) इन दिनों में व्यवसाय के रूप में शिक्षक को पहले से बेहतर वेतन दिया जा रहा है।
(4) आजकल शिक्षकों के सुसंगठित एवं परिपूर्ण गठित संगठन एवं महासंगठन है।
(5) अभी भी व्यावसायिक शिक्षकों को सामान्य एवं व्यावसायिक तैयारी की ओर अधिक जरूरत है।
(6) शिक्षण में अभी भी व्यक्तिगत इच्छाओं को व्यवसाय के रूप में पूर्ण करने की बहुसंख्या है, जोकि व्यावसायिक शिक्षा को इसमें स्थानान्तरित की जानी है।

अमेरिका की राष्ट्रीय शिक्षा संघ की तरह कोई संगठन भारत में नहीं है लेकिन फिर भी शिक्षकों का एक शक्तिशाली व्यावसायिक संघ भारत में बन चुका है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि भारत में शिक्षा को आजीविका के रूप में अपनाते हुए इसे संपूर्ण रूप से व्यावसायिक दर्जा दिया जाने लगा है।

(IV) अध्यापकों के लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र (Professional ethics for teachers)–आधुनिक युग में शिक्षण को व्यवसाय के रूप में माना जाने लगा है। शिक्षकों की अब राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यावसायिक संगठन बनाए जा चुके हैं। अब समय आ चुका है कि शिक्षकों ने अपने व्यवसाय को पूरा सम्मान व यश प्रदान करने के लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र को विकसित किया है।

भारत में शिक्षकों के संगठन जैसे सर्व भारतीय कर्मचारी शिक्षा संघ *(AIFEA)* का गठन किया जा चुका है। जोकि शिक्षकों की सेवा शर्तों के लिए संघर्ष करते हैं व वेतन (तनखाह) के संशोधन की कोशिश करते हैं। लेकिन इंग्लैंड व अमेरिका में अध्यापक व्यावसायिक संगठनों को बनाते हैं जो शिक्षण व्यवसाय के लिए बहुत मेहनत, कार्यकुशलता के साथ अपने व्यवसाय के लिए कार्य करते हैं। वहाँ के शिक्षक अपने स्तर को सुधारने के लिए व सेवा की शर्तों में संशोधन हेतु बहुत प्रयास करते हैं। वे शिक्षकों के लिए आचार-संहिता का प्रतिपादन करते हैं ताकि शिक्षा का स्तर विशेष बनाए रखा जा सके।

(V) अध्यापक के लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र का अर्थ (Meaning of professional ethics for teacher)–एक विशेष व्यवसाय की अपनी बहुत सारी विशेषताएँ होती हैं। व्यापार संघों द्वारा व्यावसायिक संगठनों का निर्माण करना, नीतिशास्त्र के कानून को स्थापित करना, संघ के सदस्यों के भविष्य जीवन का सुधार करना व कानून के अनुसार चलना आदि कार्य करने होते हैं। व्यवसाय में दो आधारभूत कार्य होते हैं–1. एक कार्य सदस्यों की सेवा करना, 2. सेवा समझ व कार्यक्षमता के अनुसार करना। जबकि दूसरे पेशों में सदस्यों की सेवा की जाती है जबकि व्यवसाय में सेवा तो सदस्यों की, की जाती है लेकिन सेवा करना उनका प्राथमिक उद्देश्य होता है।

प्रत्येक व्यवसाय के सेवा करने के अपने व्यवसाय के नीतिशास्त्र होते हैं जोकि सामान्य नीतिशास्त्र से भिन्न होते हैं जैसे कि शर्तें, नियम, सेवा की गुणवत्ता बनाए रखना आदि।

व्यावसायिक नीतिशास्त्र में नीतिशास्त्र शब्द अपने व्यवसाय के प्रति उत्तरदायित्व की ओर प्रेरित करता है कि हमें अपने व्यवसाय के उत्तरदायित्व को पूरा करना है। बहुत-सी संस्थाएँ आचार-संहिता तो रखते हैं लेकिन व्यावसायिक नीतिशास्त्र का पालन नहीं करते।

आचार-संहिता के लाभ और हानियाँ अनेकों हैं। व्यावसायिक नीतिशास्त्र के विस्तृत सिद्धांत एवं सूत्र हैं जोकि मानवता की सेवा व रक्षा के लिए व उसकी प्रकृति को समझते हुए अनेकों नैतिकता के मूल्यों व आदर्शों से दर्शनशास्त्र के अनुसार लिए गए हैं।

कुछ व्यावसायिक संस्थाओं ने राष्ट्रीय स्तर पर स्वयं नियंत्रित सभाओं का गठन किया है। इन सभाओं ने उनके विशेष व्यवसाय में प्रविष्टि के नियम बनाए हैं व उस व्यवसाय को ठीक ढंग से करने की प्रक्रियाएँ व स्तर बताए हैं व उस व्यवसाय में से अयोग्य व्यक्तियों को निष्कासित करने की प्रक्रियाएँ बताई हैं। चिकित्सा सभा व विधिज्ञ सभा इन स्वयं नियंत्रित सभाओं के उदाहरण हैं। यह स्वयं नियंत्रित संस्थाएँ अपने व्यवसाय को अपने नियमानुसार नियंत्रित करते हैं।

शिक्षण व्यवसाय ने भी अपनी आचार-संहिता एवं व्यावसायिक नीतिशास्त्र प्रतिपादित किया है।

(VI) व्यावसायिक नीतिशास्त्र की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and significance of profe ethics)–शिक्षण व्यवसाय की आवश्यकता निम्न कारणों से हुई–

(1) शिक्षकों के लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र की बहुत अधिक आवश्यकता है ताकि शिक्षक अपने व्यवसाय यश व स्तर बनाए रख सकें।

(2) जैसा कि दूसरे व्यवसायों में हम देखते हैं, शिक्षण व्यवसाय में भी स्तर गिरता जा रहा है। अध्यापक अपने उत्तरदायित्वों को भूलते जा रहे हैं। वे स्थानीय राजनीति व अन्य अशैक्षिक गतिविधियों में लगे हुए हैं। यह समय है कि व्यावसायिक संगठन ऐसे स्वच्छ एवं सार्वभौमिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र अध्यापकों के लिए शिक्षक अपने उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभा सकें व विद्यार्थियों, समाज, माता-पिता व मानवता के कर सकें। इसके लिए स्वच्छ व सार्वभौमिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र की आवश्यकता है।

(3) अध्यापकों के लिए व्यावसायिक नीतिशास्त्र की आवश्यकता इसलिए है ताकि अध्यापक अपने विद्यार्थि समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व सही ढंग से निभा सकें।

(4) अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों एवं समाज के समक्ष एक आदर्श रूपी उदाहरण अपने आप को प्रस्तु ताकि जो नैतिकता के मूल्य अध्यापक रखता है वह नैतिक हों, स्वच्छ हों, नीतिपूर्ण हों। क्योंकि अ विद्यार्थियों व समाज के प्रति व अपने व्यवसाय के प्रति एक उत्तरदायित्व है जो व्यावसायिक नीतिशास्त्र उसे सफलतापूर्वक पूरा करना है।

(5) व्यावसायिक नीतिशास्त्र अध्यापक के लिए अति आवश्यक है ताकि वह शैक्षिक क्षेत्र के उच्च स्तर को, उस को, अनेकों शिक्षण कौशलों की दक्षता को विद्यार्थियों को देकर एवं वह अपने व्यक्तिगत जीवन में गुणवत्ता लाकर, बौद्धिक विकास को बढ़ाकर अपने विद्यार्थियों को देकर अपने व्यवसाय का उत्तरदायित्व स

(VII) अध्यापकों के व्यावसायिक नीतिशास्त्र के लिए कुछ विशेष बातें (Some specific items of profe ethics for teachers)–

(1) अध्यापकों को ऐसा कुछ कभी नहीं करना चाहिए जिससे उनकी व्यक्तिगत रूप में बदनामी हो व सामू व्यवसाय की बदनामी हो या क्षति हो।

(2) अध्यापकों को लिखित व अलिखित आचारशास्त्र का सख्ती से पालन करना चाहिए ताकि भूतकाल में रहे के आदर्श व उनकी परंपराओं को स्थापित किया जा सके।

(3) अध्यापक अपने जीवन में जो भी मुसीबतें, कुंठा उत्पन्न करने वाली स्थितियों को देखें, उसे व्यावसायिक के अनुसार बड़े नम्र स्वभाव से व विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से सुलझाना चाहिए।

(4) अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों के साथ स्कूल के प्रबन्ध की तरफ से व अधिकारियों की तरफ से अन्यायपूर्ण व्यवहार की प्रक्रिया से बचाना चाहिए।

(5) अध्यापकों को अपने साथी अध्यापकों का सम्मान करना चाहिए व उनके बारे में कभी भी बुराई नहीं कर

(VIII) अध्यापकों के लिए नीतिशास्त्र के नियम या कानून (Ethical code for teachers)–अध्याप का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। देश का भविष्य अध्यापकों एवं विद्यार्थियों पर निर्भर करता है। विद्यार्थी की शिक्षा अध्याप प्रतिस्पर्धता, त्याग एवं उनके चरित्र पर निर्भर करती है। इसके लिए अध्यापकों को नैतिकता के नियमों, आदर्शों द्वा देने की जरूरत है ताकि अध्यापक अपने विद्यार्थियों को भी नैतिकता के रास्ते में हो जा सके। शिक्षकों के संगठन, अधिकारियों को नीतिशास्त्र के कानून बनाने की आवश्यकता है ताकि अध्यापक उन्हें अपनाकर अपना उत्तरदायित्व

(IX) अध्यापकों के लिए शपथ लेने का एक नमूना (A specimen of an oath for teachers)–अ लिए शपथ लेने का एक नमूना प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर सर्व भारतीय कर्मचारी अध्यापक संगठन एवं एन. सी टी. द्वारा कई कार्यशालाओं में अनेकों शिक्षाविदों पर सुझाया गया है। जो इस प्रकार है–**"हम, भारत के अध्यापक, नीतिशास्त्र के नियमों को मानने का संकल्प करते हैं।"** *(We, the teachers of India, resolve to adopt the professional Ethics.)*

यह सार्वभौमिक रूप से महसूस किया जाता रहा है कि अध्यापकों के व्यवसाय के स्तर को ऊपर उठाने की ताकि अध्यापकों का सम्मान, यश व उनमें एकता स्थापित की जा सके। इसलिए, यह जरूरी हो जाता है कि अध्याप एक नीतिशास्त्र "अध्यापक परिवार व समुदाय" की सुरक्षा व मार्गदर्शन के लिए हो।

अध्यापक की स्वायतता तथा व्यावसायिक स्वतन्त्रता
(Teachers Autonomy and Professional Independence)

अध्यापक की व्यवसायिक स्वतन्त्रता (Teacher's Professional Independence)–अध्यापक की व्यावसायिक स्वतन्त्रता ऐसी अवस्था है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक खुलापन होता है। अध्यापकों के कार्य में प्रबन्ध समिति तथा प्रधानाचार्य द्वारा बाधा उत्पन्न नहीं की जाती। वे बिना किसी आन्तरिक विवाद या शिकायत के एक साथ कार्य करते हैं। वे एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र होते हैं। अध्यापकों को कार्य के अधिक नहीं लादा जाता तथा उन्हें कठिनाइयों को पार करने के लिए पर्याप्त रूप से अभिप्रेरित किया जाता है ताकि वे अपनी कठिनाइयों और निराशाओं पर स्वयं विजय पा सके। उन्हें अपने कार्य से सन्तुष्टि होती है। उन्हें विद्यालय से जुड़े रहने पर गर्व होता है।

अध्यापक की स्वायतता (Teacher's Autonomy)–अध्यापक की स्वायतता में स्वतन्त्रता की तुलना में कम खुलापन होता है। प्रधानाचार्य अध्यापकों को लगभग पूर्ण स्वतन्त्रता दे देता है ताकि वे अपनी पारस्परिक क्रिया के लिए अपनी सामाजिक आवश्यकता पूर्ति हेतु समूह के अन्दर से ही रास्ते निकाल सके। अध्यापक अपने उद्देश्यों को आसानी से पूरा करते हैं, मिलकर काम करते है और संगठन के कार्य को पूरा करते हैं। अध्यापको का मनोबल ऊंचा होता है पर इतना ऊंचा नहीं होता जितना की व्यावसायिक स्वतन्त्रता में होता है। प्रधानाचार्य विद्यालय को एक व्यापारिक संस्था के रूप में चलाता है और अध्यापकों से अलग-अलग रहता है। वह तरीकों व नियमों को निश्चित कर देता है और अध्यापक उनका पालन करते हैं। वह विचारशील होता है और आदर्श स्थापित करने के लिए वह स्वयं परीश्रम करता है।

◆◆◆

2.9 विद्यालय शिक्षा में विभिन्न हिस्सेदारों की भागेदारी
(Participation of Different Shakeholders in School Education)

माध्यम (Media)

20. माध्यम से आपका क्या अभिप्राय है? मुद्रित तथा अमुद्रित माध्यमों का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by media? Describe print media and non-print media.)

उत्तर–अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Media' का अर्थ होता है–'Means of Mass Communication'।

अतः सबसे पहले 'मॉस' (Mass) शब्द की अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नरस डिक्शनरी (Oxford Advanced Learner's Dictionary-1996, p-720) में मॉस (Mass) शब्द के दो अर्थ दिए गए हैं, जिन्हें हिन्दी में इस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है–(क) बिना किसी निश्चित आकार-प्रकार या क्रम के किसी चीज की बड़ी मात्रा, (ख) बड़ी मात्रा में एकत्र लोग या चीजें। (1. An often large quantity of something without a definite shape, form or order, 2. Large number of people or things together)। हिन्दी में इस शब्द के लिए अनेक शब्द उपलब्ध हैं, जैसे–जन, लोक, भीड़, दल आदि। परन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि वास्तव में 'मॉस' (Mass) शब्द किसी एक स्थान पर एकत्र लोगों की भीड़ का अर्थ-बोध नहीं कराता, बल्कि यह शब्द तो इधर-उधर फैले, रहने वाले व्यक्तियों का अर्थ-द्योतक है जो अलग-अलग वर्ग, समुदाय, परिस्थिति, स्थान आदि से संबंधित हैं।

अब हम 'Communication' अर्थात् कम्यूनिकेशन' शब्द को लेते हैं। अंग्रेजी भाषा में यह शब्द 'कम्यूनिकेट' Communicate)' शब्द से बना है, जिसके अर्थ हैं–

(i) Make something known, convey अर्थात् किसी चीज के बारे में जानकारी देना।

(ii) Exchange news, information, idea etc. अर्थात् समाचार, सूचना, विचार आदि का आदान-प्रदान।

हिन्दी भाषा में इसके लिए 'संचार' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के शब्द 'मॉस कम्यूनिकेशन' (Mass Communication) के लिए हिन्दी भाषा में जिस **'जनसंचार'** शब्द का प्रयोग होता है, उसका अर्थ है–जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान करना। चूँकि अंग्रेजी भाषा में 'मॉस' (Mass) शब्द के अर्थ में मीन्स (Means) अर्थात् 'साधन' शब्द का भी प्रयोग हुआ है, अतः 'मीडिया' (Media) शब्द का अर्थ हुआ–वे साधन, जिनके माध्यम से जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान की जाती है।

इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा के 'मल्टी' (Multi) शब्द के लिए हिन्दी में प्रायः 'बहु' उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार 'Multimedia' या 'बहुमाध्यम' का अर्थ हुआ–ऐसे बहुआगामी साधन, जिनके माध्यम से जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान की जाती है। माध्यम (Media) और बहुमाध्यम (Multimedia) में अन्तर यह है कि 'बहुमाध्यम' (Multi Media) का ही एक प्रकार है क्योंकि 'माध्यम' शब्द में मुद्रित माध्यम (जैसे–समाचार-पत्र, पत्रिका या श्रव्य-माध्यम (जैसे–रेडियो), दृश्य-माध्यम (जैसे–इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि), दृश्य-श्रव्य माध्यम (जैसे–दूरदर्शन, चलचित्र आदि) आ जाते हैं। मुद्रित-माध्यम व दृश्य माध्यम में केवल आँखों द्वारा पढ़कर या देखकर सूचना-प्राप्ति का प्रयास किया जाता है, श्रव्य-माध्यम का प्रयोग करते समय जनसाधारण केवल कानों द्वारा (सुनकर) सूचना प्राप्त करते हैं जबकि दृश्य-श्रव्य माध्यम में आँखों व कानों (देखकर व सुनकर, कभी-कभी पढ़कर भी) द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है।

अतः यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजी भाषा के 'मॉस मीडिया' (Mass Media) शब्द सही हिन्दी रूपान्तरण होगा–जनसंचार माध्यम अथवा सामूहिक माध्यम। जब किसी सूचना, समाचार, विचार आदि को दूर-दूर रहने वाले सभी व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिए जिस माध्यम का प्रयोग किया जाता है, उसे 'जनसंचार माध्यम' कहा जाता है।

जनसंचार माध्यम की प्रमुख विशेषताएँ

आज का युग विज्ञान का युग है। पिछले 80-90 वर्षों में जनसंचार के क्षेत्र में बड़ी क्रांति हुई है। पहले जहाँ केवल मुद्रित सामग्री को ही 'जनसंचार' माध्यम माना जाता था, अब रेडियो, दूरदर्शन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेलीकॉन्फ्रेंस, चलचित्र, वीडियो, कृत्रिम उपग्रह आदि भी जनसंचार माध्यमों की परिधि में आ गए हैं। इनमें से केवल टेलीकॉन्फ्रेंस की छोड़कर शेष सभी जनसंचार माध्यमों में कुछ विशेषताएँ लगभग समान रूप से मिलती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं–

1. सभी जनसंचार माध्यमों में किसी-न-किसी भौतिक उपकरण या वस्तु का प्रयोग होता है।
2. सभी जनसंचार माध्यमों में एक पक्षीय सम्प्रेषण होता है। अर्थात् सम्प्रेषण के दो पक्ष होते हैं– वक्ता तथा श्रोता या लेखक तथा पाठक या प्रस्तोता तथा दर्शक। जब ये दोनों पक्ष आमने-सामने होते हैं तब वक्ता या प्रस्तोता के विचार, संदेश आदि को प्राप्त करने के बाद श्रोता या दर्शक तुरन्त ही अपनी प्रतिक्रिया द्वारा उसे प्रतिपुष्टि प्रदान करता है, परन्तु जनसंचार माध्यमों का प्रयोग करते समय प्रायः श्रोता या दर्शन अपनी प्रतिक्रिया वक्ता या प्रस्तोता को सम्प्रेषित नहीं कर पाता है।
3. मुद्रित-माध्यम (Print Media) को छोड़कर शेष सभी जनसंचार-माध्यमों द्वारा सूचना-प्राप्त करने का एक निश्चित समय तथा सूचना-प्राप्ति की निश्चित अवधि होती है, जैसे–रेडियो, दूरदर्शन आदि पर प्रसारित होने वाले समाचारों, सूचनाओं आदि का एक निश्चित समय तथा निश्चित अवधि होती है।
4. इन संचार-माध्यमों द्वारा किसी घटना आदि से संबंधित समाचार का सीधा प्रसारण, सम्प्रेषण भी किया जा सकता है और रिकॉर्ड करने के बाद भी। उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त 'जनसंचार माध्यम' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

"किसी समाचार, सूचना, विचार आदि को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले वे सभी भौतिक उपकरण, साधन आदि, जिनमें प्रायः एकपक्षीय सम्प्रेषण (केवल वक्ता से श्रोता तक) होता है, जनसंचार-माध्यम कहलाते हैं।"

परन्तु जब हम शिक्षण के लिए जनसंचार-माध्यमों के प्रयोग की बात करते हैं, तब यह परिभाषा और भी संकुचित हो जाती है क्योंकि इन परिस्थितियों में जनसंचार के ये माध्यम केवल शिक्षा-जगत् की क्रियाओं से ही संबंधित हो जाते हैं अर्थात् इनके द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सरल, सहज व सर्वसुलभ बनाया जाता है या फिर इन्हें इस प्रक्रिया के लिए प्रयोग में लाया जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि शिक्षा-जगत् में ये उपकरण, साधन आदि या तो कक्षा-कक्ष में चलने वाली शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया (Teaching-Learning Process) के दौरान सहायक-सामग्री के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं या फिर इनके माध्यम से दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले उन विद्यार्थियों को अधिमग-अनुभव प्राप्त करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं, जो विधिवत औपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यालय में आने में असमर्थ हैं।

जनसंचार माध्यम के प्रकार *(Types of Mass Media)*

जनसंचार माध्यम दो प्रकार के होते हैं–(क) मुद्रित माध्यम (Print Media) तथा (ख) अमुद्रित माध्यम (Non-print Media)

(क) मुद्रित माध्यम (Print Media) : मुद्रित जनसंचार माध्यम वे माध्यम हैं, जिनका प्रयोग करते हुए किसी भी समाचार, सूचना, विचार आदि को लिखित रूप प्रदान करके श्रोता, पाठक या अधिगमकर्ता (Learner) तक सम्प्रेषित किया जा सकता है। श्रोता, पाठक अथवा अधिगमकर्ता अपनी दृश्य-इन्द्रियों अर्थात् आँखों द्वारा उस सूचना, समाचार विचार आदि को देखकर या पढ़कर उसे ग्रहण करता है। यह सूचना-प्राप्ति का पारम्परिक साधन है। एडगर डेल ने अपने अनुभव शंकु प्रतिमान में उसे सबसे शिखर पर रखा है क्योंकि जब इस माध्यम का प्रयोग कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों को अधिगम-अनुभव प्रदान करने के लिए किया जाता है, तब वे इसमें प्रयुक्त शाब्दिक संकेतों (Verbal Symbols) द्वारा ही किसी नए प्रत्यय या विषय का ज्ञान प्राप्त करते हैं। चूँकि अब मुद्रित सामग्रियों के लिए नवीनतम वैज्ञानिक यंत्र; जैसे–प्रिंटिंग मशीन, कम्प्यूटरीकृत प्रकाशन आदि उपलब्ध हैं, अतः यह सबसे सस्ता, सर्वसुलभ तथा अत्यधिक उपयोगी माध्यम बन गया है।

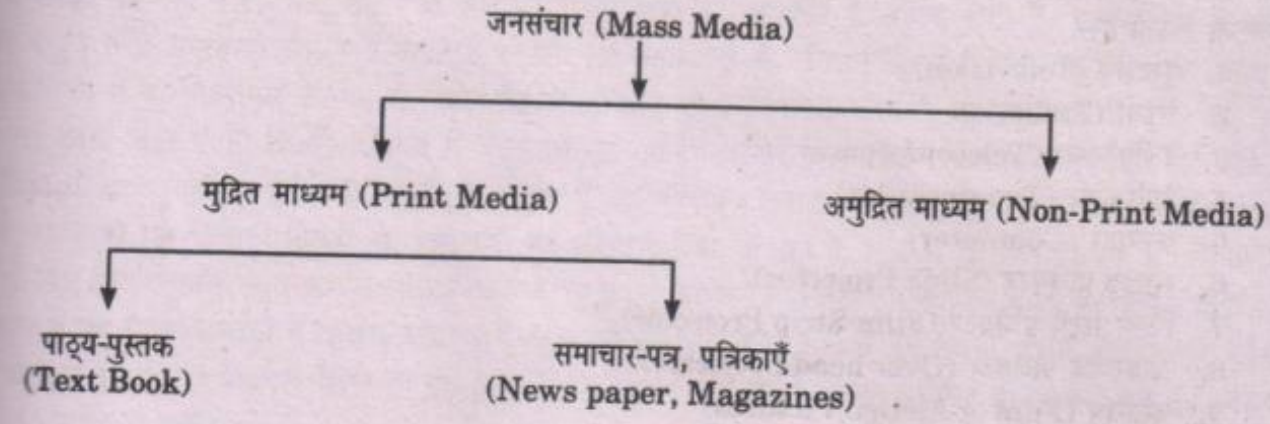

आरेख : मुद्रित माध्यम का वर्गीकरण

मुद्रित माध्यम की सीमाएँ : निस्संदेह मुद्रित माध्यम आज सबसे सस्ता तथा सर्वसुलभ जनसंचार माध्यम है। शिक्षा-जगत् में इसकी उपयोगिता भी असंदिग्ध है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. इनके द्वारा शिक्षक तथा विद्यार्थी के मध्य तत्काल अन्तःक्रिया होना संभव नहीं है। विशेषकर दूरवर्ती शिक्षा के लिए प्रकाशित होने वाली पाठ्य-पुस्तकों के संबंध में यह दोष सबसे बड़ी बाधा बनकर (उभरा) है।
2. इस माध्यम में विद्यार्थी को तत्पर नहीं रखा जा सकता। एडगर डेल ने भी इसे अपने शंकु प्रतिमान में सबसे ऊपर रखा है क्योंकि इस माध्यम में जिन शाब्दिक प्रतीकों का प्रयोग होता है, उनसे नए प्रत्यय, संकल्पना आदि का निर्माण करना अपेक्षाकृत कठिन है। अतः विद्यार्थी भी इनमें ज्यादा रुचि नहीं लेते हैं।
3. प्रत्येक विद्यार्थी की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता दूसरे विद्यार्थी की इन क्षमताओं के बिल्कुल समान नहीं होती है। अतः यह माध्यम विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं के अनुसार सीखने की सुविधा प्रदान नहीं करता।
4. इस माध्यम का प्रयोग करते समय प्रायः विद्यार्थी को शिक्षक की सहायता लेनी ही पड़ती है, अतः यह पूर्णतः अभिक्रमित सामग्री (Programmed Material) भी नहीं हैं।
5. इस माध्यम में केवल तथ्यों की जानकारी, सूचना पर ही बल दिया जाता है, शिक्षण-विधियों, प्रविधियों, व्यूहरचनाओं आदि का इसमें अभाव होता है।
6. चूँकि इस माध्यम का प्रयोग करते समय शिक्षक व विद्यार्थी के बीच प्रत्यक्ष अन्तःक्रिया नहीं होती, अतः विद्यार्थियों को न तो प्रतिपुष्टि (Feedback) प्राप्त होती है और न ही पुनर्बलन (Reinforcement)।
7. इस माध्यम से न तो छात्राध्यापकों (Pupil-teacher) को समुचित प्रशिक्षण दिया जा सकता है और न ही विद्यार्थियों के कौशलों का समुचित विकास किया जा सकता है।

(ख) अमुद्रित माध्यम : अमुद्रित जनसंचार माध्यम वे माध्यम हैं, जिनमें प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री प्रायः छपी हुई नहीं होती और जिन्हें सम्प्रेषित करने के लिए किसी वैज्ञानिक उपकरण की आवश्यकता होती है। इन वैज्ञानिक उपकरणों को भी हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं–

(अ) हार्डवेयर (Hardware) : ये वे भौतिक उपकरण होते हैं, जो किसी भी सामग्री का प्रसारण, सम्प्रेषण करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनकी तुलना हम मानव-शरीर के विभिन्न अंगों से कर सकते हैं।

(आ) सॉफ्टवेयर (Software) : ये वे भौतिक उपकरण होते हैं, जिन पर किसी भी सामग्री, सूचना आदि को पहले अंकित किया जाता है और उसके बाद हार्डवेयर की सहायता से उनका प्रसारण, सम्प्रेषण किया जाता है। इसकी तुलना हम मनुष्य के मन या आत्मा से कर सकते हैं।

जिस प्रकार मानव-शरीर में अनेक अंग किसी भी कथन को प्रकट करते समय गतिशील या सक्रिय हो जाते हैं परन्तु मन ही उस कथन या विचार को उत्पन्न करके उसे अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न अंगों (स्वर तंत्री, जिह्वा होंठ आदि) का संचालन करता है, ठीक उसी प्रकार सॉफ्टवेयर भी मूलतः विचारों को हार्डवेयर की सहायता से सम्प्रेषित करता है।

आज का युग विज्ञान का युग है। आज जनसंचार के अनेक माध्यम प्रचलित हैं जिनमें से अधिकांश अमुद्रित माध्यम की श्रेणी में आते हैं। जनसाधारण तक इनकी पहुँच व इनके व्यापक प्रभाव की दृष्टि से इन अमुद्रित माध्यमों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जा सकता है–

1. दूरदर्शन (Television)
2. रेडियो (Radio)
3. टेलीकॉन्फ्रेंस (Teleconference)
4. टेपरिकार्डर (Taperecarder)
5. कम्प्यूटर (Computer)
6. स्लाइड प्रोजेक्टर (Slide Projector)
7. फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर (Film Strip Projector)
8. ओवर हैड प्रोजेक्टर (Over head Projector)
9. चलचित्र (Film or Motion Pictures)

◆◆◆

बहुमाध्यम (Multimedia)

21. बहु–माध्यम उपागम से क्या तात्पर्य है? अनुदेशनात्मक विकास में बहुमाध्यम के प्रयोग की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए। इसके प्रयोग में आप किन–किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखेंगे।
(What do you mean by Multimedia Approach? How can multimedia be used in instructional development and what are the principles of using multimedia approach in teaching & learning?)

अथवा

'मल्टीमीडिया' पद को परिभाषित कीजिए। शिक्षा में मल्टीमीडिया की भूमिका पर विचार कीजिए।
(Define the term 'Multimedia'. Discuss the role of Multimedia in education.)

उत्तर–शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक तकनीकी में दो उपागमों का प्रयोग किया जाता है। यह अनुदेशन की प्रक्रिया के माध्यम के रूप में काम करते हैं। रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, शिक्षण मशीन तथा कम्प्यूटर को शैक्षिक हार्डवेयर उपागम कहते हैं। शिक्षण को हार्डवेयर उपागम से यान्त्रीकरण किया जाता है। सम्प्रेषण माध्यम का कार्य करता है। सॉफ्टवेयर में मनोविज्ञान तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का उपयोग शिक्षण नियोजन तथा अनुदेशन सामग्री की रचना में किया जाता है जिससे विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

अनुदेशन माध्यम एक साधन है जिससे शिक्षा का प्रसार किया जाता है। अनुदेशन माध्यम से छात्रों की दूरी की समस्या का समाधान होता है। यह दो प्रकार के होते हैं–प्रक्षेपित तथा अप्रेक्षित। शिक्षण सामग्री को विविध रूप में एक पाठ्य-वस्तु के लिए इन्हें प्रयुक्त किया जाता है जिसे बहुमाध्यम उपागम कहा जाता है। सम्प्रेषण माध्यम को अनुदेशन की विविध प्रविधियों के साथ भी सुगमता से प्रयुक्त किया जा सकता है। इस विशिष्ट मिरण का प्रयोग सम्पूर्ण अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करके अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। इसका प्रयोग केवल शिक्षक ही नहीं अपितु छात्र भी सीखने के लिए करते हैं। शिक्षण में बहुमाध्यम उपागम के प्रयोग को अनुदेशनात्मक विकास भी कहते हैं। इस प्रकार यह शिक्षण उपागम की समस्याओं के समाधान में लाभदायक है।

इसके अतिरिक्त शिक्षण-अधिगम हेतु बहु-माध्यमिक उपागम का प्रयोग औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण-अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जा रहा है। स्कूली छात्रों के लिए विभिन्न विषयों में रेडियो, टी.वी. पाठों का प्रसारण किया जाता है। रेडियो एवं टी.वी. के प्रयोग के अतिरिक्त विभिन्न विषयों के शिक्षण के लिए कम्प्यूटर का भी प्रयोग किया जाने लगा है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक टी.वी. कार्यक्रम निर्मित करने के लिए शैक्षणिक माध्यमिक अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की गई है। विभिन्न माध्यमों के प्रयोग के लिए विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों जैसे केन्द्रीय शैक्षणिक तकनीकी संस्थान तथा राज्यों में राज्य शैक्षणिक तकनीकी संस्थानों की स्थापना की गई है।

शिक्षण-अधिगम के बहु-माध्यमिक उपागम के क्षेत्र में अनुसंधानों से पता चला है कि जिन छात्रों को इस उपागम से पढ़ाया जाता है उनकी उपलब्धि परम्परागत शिक्षण के द्वारा पढ़ाए गए छात्रों की उपलब्धि से अधिक होती है। इस उपागम के प्रयोग के क्षेत्र में हुए सभी अनुसंधान यही बात बताते हैं क्योंकि इन अनुसंधानों के परिणामों में कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार से शिक्षण-अधिगम में बहु-माध्यमिक उपागम का प्रयोग शिक्षण-अधिगम को प्रभावशाली बनाने में सहायक होता है।

नई शिक्षा नीति में भी शिक्षण-अधिगम में बहु-माध्यमिक उपागम के प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है। इस नीति के तहत शिक्षा के सभी स्तरों पर एवं सभी विषयों के शिक्षण में बहु-माध्यमिक उपागम के प्रयोग के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रहे अध्यापकों एवं विभिन्न विषयों के अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है ताकि वे शिक्षण-अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षण करते समय एक से अधिक माध्यमों का प्रयोग कर सकें। प्राथमिक, माध्यमिक वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षण-अधिगम में बहु-माध्यमिक उपागम के साधनों जैसे रेडियो, टी.वी., टेपरिकॉर्डर, वी.सी.आर., कम्प्यूटर इत्यादि का प्रावधान किया जा रहा है ताकि इन शिक्षण संस्थानों में शिक्षण-अधिगम प्रभावशाली बने एवं अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकें।

अनुदेशनात्मक विकास में बहुमाध्यम के प्रयोग की प्रक्रिया (Using Multimedia in Instructional Development)–शिक्षण तथा अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग अनिवार्य है इसके लिए निम्नलिखित सोपानों का अनुकरण किया जाता है–

1. अन्तिम व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे परिभाषित करना।
2. पाठ्यवस्तु तथा व्यूह रचना की व्याख्या करना।
3. शिक्षण विधि तथा व्यूह रचना का प्रयोग।
4. मूल्यांकन में प्रयोग करना।
5. निदानात्मक निर्माण के आधार पर सुधारात्मक अनुदेशन की व्यवस्था तथा पृष्ठ पोषण प्रदान करना।

1. अन्तिम व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे परिभाषित करना–विद्यालय में प्रवेश करने के पश्चात् अध्यापक के लिए यह जानना आवश्यक है कि विद्यार्थी की योग्यता कितनी है जिससे वह उसका व्यवहार किस सीमा तक बदल सकता है, इसलिए बहुमाध्यम का प्रयोग करके वह विद्यार्थी के अन्तिम व्यवहार को निर्धारित कर लेता है उसे परिभाषित करता है।

2. पाठ्यवस्तु तथा व्यूह रचना का प्रयोग–पाठ्यवस्तु वह माध्यम है जो शिक्षण तथा अधिगमकर्ता के मध्य अन्तःक्रिया के लिए हस्तक्षेप करती है जिस पाठ्यवस्तु की जानकारी प्राप्त करता है तथा व्यूह रचनाओं के प्रयोग के लिए निर्णय लेता है।

3. शिक्षण विधि तथा व्यूह रचना का प्रयोग–शिक्षा में नवीन शिक्षण विधियों का प्रयोग करके अधिगमकर्ता को शिक्षण किया जाता है शिक्षण विधियों में बहुमाध्यम का प्रयोग क्यों कब और कैसे किया जाए इसका निर्धारण आवश्यक है।

4. मूल्यांकन करना–मूल्यांकन वह माध्यम है जिससे विद्यार्थी के व्यवहार में क्या परिवर्तन हुआ इसकी जानकारी प्रदान करने में सहायक है। विभिन्न बहुमाध्यम प्रविधि के प्रयोग से मूल्यांकन आसान हो जाता है।

5. निदानात्मक निर्णय के आधार पर सुधारात्मक अनुदेशन–विद्यार्थी की योग्यता, रुचि, रुझान आवश्यक अथवा उसकी अन्तर्निहित शक्तियों की जानकारी प्राप्त करके अध्यापक सुधारात्मक अनुदेशन प्रदान करता है। इसमें बहुमाध्यम प्रविधि का प्रयोग सहायक है। अध्यापक यदि चाहे तो अन्त में पृष्ठपोषण भी सुविधाजनक रूप से कर सकता है।

सिद्धान्त (Principles)–कक्षा शिक्षण में शैक्षिक माध्यम के रूप में प्रयोग करने में अधोलिखित पाँच सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए–

1. उद्देश्यों को ध्यान में रखकर चयन करना।

2. कक्षा में तत्परता लाने के लिए माध्यम का चयन।
3. भौतिक परिस्थितियों के लिए तैयारी।
4. विद्यार्थी अनुक्रिया सफल बनाने के लिए निर्देशन।
5. माध्यम की प्रभावशीलता की जानकारी प्राप्त करने के लिए लगातार मूल्यांकन करना।

भारतवर्ष में (N.C.E.R.T.) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग प्रयोग में दूरदर्शन, रेडियो का प्रयोग सेवारत शिक्षकों के लिए किया है।

उपग्रह अनुदेशनात्मक दूरदर्शन प्रयोग (Satellite Instructional Television Experiment (SIT माध्यम अभी नया प्रयोग है लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावशाली सम्प्रेक्षण है। दूरदर्शन का विस्तार सीमित है परन्तु उप सहायता से इसका विस्तार बढ़ा दिया गया है। इस उपग्रह को आकाश में 22,300 मील ऊंचाई पर विषुवत् रेखा पर किया गया है। ये विषुवत् रेखा की परिधि में घूमते हैं और दूरदर्शन के प्रसारण केन्द्र का कार्य करते हैं। इसके शिक्षा के प्रयोग के सम्बन्ध में अधिक वाद-विवाद रहा, अन्तर्राष्ट्रीय उपग्रह का सुझाव दिया और उसका प्रयोग दूरदर्शन सम्प्रेषण जाये। उपग्रह अनुदेशनात्मक दूरदर्शन का प्रयोग (SITE) ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 40 करोड़ जनसंख्या के लिए किया ग

(Objectives of SITE) उपग्रह दूरदर्शन के प्रयोग के उद्देश्य–

उपग्रह दूरदर्शन प्रयोग योजना के अनेकों उपयोग हैं। इसके सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. प्रभावशाली सामूहिक सम्प्रेषण (Mass Media) में इसके प्रयोग का विशेष महत्त्व तथा योगदान देना।
2. ग्रामीण क्षेत्र के लिए दूरदर्शन का अनुदेशनात्मक प्रणाली के लिए विशेष उपयोग करना।
3. बालकों तथा प्रौढ़ के लिए ग्रामीण क्षेत्र के विकास हेतु उपग्रह दूरदर्शन योजना का व्यवहारिक उपयोग करन

4. आर्थिक तथा सामाजिक राष्ट्रीय विकास हेतु उपग्रह योजना का उपयोग करना (Use of Satellite Telev Programme)–उपग्रह दूरदर्शन की योजना की उपयोगिता–

1. इसका प्रयोग कक्षा तथा कक्षा से बाहर किया जा सकता है।
2. प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक-शिक्षा में प्रभावशाली रूप से प्रयोग किया जा सकता है।
3. विभिन्न विषयों के विशिष्ट ज्ञान का प्रसारण किया जा सकता है।
4. राष्ट्रीय तथा सामाजिक विकास के लिए तथा परिवर्तन हेतु इस योजना का प्रयोग किया जा सकता है।
5. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है।
6. पत्राचार पाठ्यक्रम, ओपन विश्वविद्यालय प्रसारण योजना मे उपग्रह-दूरदर्शन का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग कि सकता है।

उपग्रह दूरदर्शन योजना द्वारा शिक्षा (Education through SITE)–

1. भाषा शिषण तथा सामाजिक व्यवहार के विकास प्रत्ययों तथा कौशलों की जानकारी आसानी से दी जा सक
2. सामाजिक परिवर्तन तथा वैज्ञानिक प्रगति के सही दृष्टिकोण को विकसित करना।
3. स्वास्थ्य, आदतों तथा सौन्दर्यानुभूति के विकास में सहयोग।
4. शैक्षिक योजनाओं तथा शैक्षिक तकनीकी के प्रति अभिरुचि तथा अभिवृत्तियों का विकास करना।
5. अनुदेशनात्मक कौशल का विकास तथा व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना।

उपग्रह दूरदर्शन योजना का महत्त्व (Importance of Satellite Television)–उपग्रह दूरदर्शन के प्रयो सिद्ध कर दिया है कि अनुदेशन तथा सम्प्रेषण माध्यम में सुधार लाया जा सकता है तथा इसे प्रभावशाली बनाया जा सक

1. विकसित राष्ट्रों के घरेलू कार्यों में इसका विशेष योगदान है।
2. यह एक महंगी योजना है लेकिन अन्य देशों की तरह भारत ने भी इसे अपनाया है।
3. उपग्रह दूरदर्शन योजना सम्पूर्ण राष्ट्र की शिक्षा के लिए किया जा रहा है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों की सामूहिक शिक्षा के लिए उपयोग किया जा सकेगा।
4. ग्रामीण जनसंख्या के आर्थिक तथा सामाजिक विकास हेतु प्रयुक्त किया जायेगा।
5. ग्रामीण जनसंख्या को शैक्षिक ज्ञान की जानकारी दी जा सकेगी।
6. इसमें सामाजिक मूल्यों का विकास किया जा सकेगा।

भारतवर्ष में शैक्षिक प्रणाली तथा कक्षा वातावरण में इस योजना का विशेष महत्त्व है।

बहुमाध्यम केन्द्र (Multi-Media Centre)–विद्यालयों के उपयोग हेतु माध्यम केन्द्र (Media Centre) स्थापित करने चाहिए। इन्हें अनुदेशनात्मक सामग्री केन्द्र अथवा (अधिगम स्रोत केन्द्र) भी पुकारा जा सकता है। इन केन्द्रों का प्रमुख कार्य अध्यापक तथा विद्यार्थियों को आवश्यक अधिगम सामग्री की सुविधा प्रदान करनी है। इन केन्द्रों में 'अनुदेशनात्मक सामग्री' मुद्रित-श्रव्य सामग्री, अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री तथा अन्य बहुमाध्यम उपागम सामग्री को इकट्ठा करके रखा जाता है तथा इसके प्रयोग के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रयोग के लिए हर प्रकार की सुविधा जुटाना भी बहुमाध्यम केन्द्र का कार्य है। विविध प्रकार के चार्ट, पोस्टर, फोटोग्राफ तथा रिकार्ड्स की भी व्यवस्था की जाती है। इन केन्द्रों पर व्यवहारिक तकनीकी के विशेषज्ञों की नियुक्ति भी की जानी चाहिए। इसमें विधि प्रकार के अनुभवों की समन्वित रूप में एकीकरण की व्यवस्था की जा सके और केन्द्र पर उपलब्ध सामग्री का समुचित रूप में उपयोग किया जा सके।

अनुदेशनात्मक विकास के बहुमाध्यम उपकरण *(Multi Media tools for Instructional Development)*

शिक्षण–मशीन (Teaching Machines)–मौलिक रूप से बी.एफ. स्किनर ने अनुदेशन के प्रस्तुतीकरण के लिए शिक्षण मशीन का विकास किया था–

1. यह शिक्षण समस्या के समाधान में सहायक होती है।
2. इसमें बाह्य अनुक्रिया के लिए अवसर दिया जाता है। छात्र अनुक्रिया को लिखता है और स्वयं उसकी पुष्टि भी करता है।
3. छात्रों को इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि उनकी अनुक्रिया सही है अथवा गलत। गलत अनुक्रिया करने पर छात्र स्पष्टीकरण किया जाता है जिससे उसे पुनर्बलन प्राप्त होता है।
4. इसका प्रयोग अभिक्रमित अनुदेशन में किया जाता है। रेखीय अनुदेशन इससे सरल तथा मितव्ययी होता है।
5. शिक्षा मशीन छात्र की अनुक्रियाओं का आलेख तैयार करती है। आलेख छात्र को इस बात की जानकारी प्रदान करता है कि उसने कितना पढ़ा है।
6. जिस पाठ्यवस्तु को शिषण मशीन में प्रस्तुत किया जाता है उसका निर्माण प्रथम रूप से किया जाता है और मूल्यांकन के पश्चात् उसे शिक्षण मशीन को दिया जाता है।
7. इस प्रकार इस मशीन द्वारा कई प्रकार के अनुदेशनों का प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है।

शिक्षण मशीन के प्रकार (Types of Teaching Machines)–

1. **स्वतः अनुदेशनात्मक मशीन (Auto Instructional Device)**–इसमें प्रक्षेपित तथा अप्रक्षेपित (Projected & Non Projected) मशीनों को सम्मिलित किया जाता है जैसे–रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र आदि।
2. **शृंखला शिक्षण मशीन (Linear Teaching Machine)**–इसको शृंखला अनुदेशन सामग्री के अध्ययन के लिए प्रयुक्त किया जाता है।
3. संचित सूचनाओं में से अपेक्षित प्रदत्तों का चयन करता है।
4. विद्युत टंकन मशीन द्वारा सूचनाओं का सम्प्रेक्षण करता है।

कम्प्यूटर का उपयोग (Uses of Computer)–

1. शिक्षण तथा अनुदेशन प्रक्रिया में छात्रों के निदान के आधार पर सुधारात्मक शिक्षण करता है।
2. शिक्षा के शोध कार्यों में प्रदत्तों के विश्लेषण सभी अनुसंधानकर्ता करने लगे हैं।
3. इसका प्रयोग शैक्षिक निर्देशन तथा परामर्श में भी किया जाता है।
4. परीक्षा प्रणाली मे छात्रों के परीक्षाफल तैयार करने, अंक चित्र तैयार करने तथा प्रमाण-पत्र तैयार करने में किया जाता है।

क्लोज़ड सर्किट दूरदर्शन (Closed Circuit Television (CCTV)–(Mass Media) सामूहिक माध्यम प्रणाली के नवीन प्रवर्त्तक में क्लोज़ड सर्किट टी.वी. का भी हाल में ही विकास किया गया है। यह शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावशाली माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। इस योजना के अन्तर्गत केबिल की सहायता से छात्रों को सूचनाएँ भेजी जाती हैं इसकी दूरी केबिल के विस्तार पर निर्भर होती है। शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

उपयोग (Use)–

1. कई कक्षाओं में एक साथ एक ही पाठ्य-वस्तु को शिक्षण किया जा सकता है।
2. इस योजना से शैक्षिक संस्थाएँ दूरदर्शन को बढ़ावा दे सकती हैं। विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुसार इसका विस्तार किया जा सकता है।
3. कक्षा शिक्षण में जिन तथ्यों को प्रस्तुत करना कठिन होता है उन्हें बड़े रूप में इस योजना से प्रदर्शित किया जा सकता है।
4. इस योजना के प्रयोग से शिक्षक को अवसर मिलता है।
5. अन्य संस्थाओं के शिक्षकों से प्रकरण के सम्बन्ध में विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं।
6. इसका प्रयोग प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा भी किया जा सकता है। इससे शिक्षक व्यवहार में सुधार लाया जा सकता है।
7. इसका प्रयोग मैडिकल महाविद्यालयों में बहुत उपयोगी है जब किसी मरीज का ऑपरेशन हो रहा हो तो थियेटर से बाहर विद्यार्थी इसका प्रदर्शन देख सकते हैं।

सीमाएँ (Limitations)–

1. इस योजना में सम्प्रेषण एकांगी होता है। छात्र अपनी कठिनाइयां हल नहीं कर पाते।
2. शिक्षण तथा छात्र का पारस्परिक सम्पर्क नहीं होता जिससे ज्ञानात्मक विकास सम्भव नहीं।
3. इसमें छात्र निष्क्रय रहता है।
4. यह अधिक खर्चीली योजना है।

रेडियो (Radio)–यह एक प्रभावशाली श्रव्य साधन है और कक्षा भवन में एक साथ बहुत से छात्रों को उपयोगी जानकारी तथा अधिगम अनुभव प्रदान करने में मदद करता है। रेडियो के प्रसारण दो प्रकार के होते हैं। एक साधारण प्रसारण जो स्थिति की सामान्य जानकारी प्रदान करता है। दूसरा शैक्षिक प्रसारण जो विशेष रूप से तैयार किया जाता है ताकि कक्षा अधिगम के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

लाभ (Advantages)–

1. शैक्षिक रुचि वाले भाषण, वाद-विवाद, विचार, गोष्ठि, वार्त्तालाप को सुनना सम्भव हो जाता है जिसमें प्रसिद्ध लेखक, शिक्षाशास्त्री, विद्वान, विचारक, डॉक्टर वकील, इन्जीनियर तथा अन्य प्रभावशाली व्यक्ति भाग ले सकते हैं।
2. स्कूल विषयों से सम्बन्धित विभिन्न उपविषयों पर आयोजित क्रमिक शैक्षणिक पाठों के माध्यम से रेडियो प्रसारण कक्षा-कक्ष अध्यापक को शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति में मदद करता है।
3. यह शिक्षा को जीवन के यथार्थ अनुभवों से एकीकृत करता है।
4. यह स्वस्थ मनोरंजन तथा आनन्द का साधन है।
5. जनसंचार साधन के रूप में रेडियो प्रसारण शैक्षिक अधिगम के किफायती साधन है।
6. यह शिक्षा के क्षेत्र में अनेक समस्याओं का समाधान करने में समर्थ है।

सीमाएँ तथा दोष (Limitations and Shortcomings)–

1. रेडियो प्रसारण के शैक्षिक मूल्य मूलतः सुनने की शक्ति पर निर्भर करते हैं। निरन्तर सुनने से अधिगम अनुभवों को प्राप्त करने के काम में छात्र रुचि नहीं लेते और लापरवाही करने लग जाते हैं।
2. इसमें शिक्षण अधिगम कार्य एक तरफा संचार प्रक्रिया बन जाता है।
3. सभी विषयों के कार्यक्रमों को सूचिबद्ध करना कठिन होता है इसलिए अध्यापकों तथा छात्रों को इन कार्यक्रमों को स्कूल में अपनी शैक्षिक एकीकृत करने में कठिनाई होती है।
4. नियत पुस्तकों एवं पर्याप्त सूचनाओं के अभाव में अध्यापक तथा विद्यार्थियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

◆◆◆

तकनीकी का प्रयोग (Use of Technology)

समकालीन शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
(Give critical examination of the role of ICT in contemporary education.)

अथवा

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का अर्थ स्पष्ट करें। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का शिक्षा के क्षेत्र में उपयोग एवं सीमाओं का वर्णन करें।
(Explain clearly the meaning of Information and Communication Technology (ICT). Describe the utility and limitations of ICT.)

उत्तर–सूचना और सम्प्रेषण तकनीकी से आजकल आमतौर पर अभिप्राय है–विचारों या आँकड़ों का कम्प्यूटर आधारित न।

*(Information and Communication technology today usually means computer-based agement of data or ideas.–**Abe Whitmar**)*

विस्तृत अर्थ में, सम्प्रेषण और सूचना तकनीकियाँ वे आधार हैं जिनकी सहायता से मानव जाति ने दूसरे जानवरों से स्वयं लग किया है।

सूचना और सम्प्रेषण तकनीकी (Information and Communication Technology or ICT) की कोई सर्वसम्मति कार्य कोई परिभाषा नहीं है क्योंकि इसमें प्रयुक्त तकनीकियाँ आदि नित दिन बदल रही हैं। यह परिवर्तन बहुत ही तेज से हो रहे हैं। ICT का सम्बन्ध डिजिटल आंकड़ों से तथा इनके भंडारण, पुनः प्राप्ति, संचारण तथा प्राप्ति (Storing, rieval Transmission and Receipt) से होता है।

ICT में 'C' से अभिप्राय है–आंकड़ों का इलैक्ट्रॉनिक साधनों द्वारा दूर तक सम्प्रेषण (Communication of Data r some distance by electronic means)। इसे हम आंकड़ों को भेजने और प्राप्त करने हेतु विभिन्न हार्डवेयर को ने वाले नेटवर्क (Network) के प्रयोग द्वारा इस उद्देश्य को अर्जित किया जाता है। ये नेटवर्क भी विभिन्न वर्गों में बाँटे सकते हैं, जैसे लोकल एरिया नेटवर्क (Local Area Network (LAN) जिसे ऑफिस बिल्डिंग के भीतर ही लिंक किया ा है, वाईड एरिया नेटवर्क (Wide Area Network or WAN) जैसे इंटरनेट जिसे बहत विस्तृत क्षेत्र से जोड़ा जाता है।

LAN में जो हार्डवेयर होते हैं उन्हें ऑफिस में सम्बद्ध कर दिया जाता है। जैसे–इनपुट और आऊटपुट यंत्र (Input and tput Devices) एवं कम्प्यूटर प्रोसैसिंग (Computer Processing)। LAN का उद्देश्य होता है–हार्डवेयर सुविधाओं आपस में बाँटना (To Share) जैसे प्रिंटर, स्कैनर, सॉफ्टवेयर एप्लीकेशन एवं आंकड़े (Printer, Scanner, Software plication and Data)। ऐसा नेटवर्क बहुत ही उपयोगी होता है, जिसमें आफिस में सभी सहयोगी सामान्य आंकड़ों ommon Data) या कार्यक्रम तक पहुँचना चाहते हैं।

ICT व्यापक संदर्भ में (ICT in Broader Context)

ICT को विस्तृत या व्यापक संदर्भ में प्रयोग करने के लिये हमें निम्न शब्दों पर ध्यान देना होगा–

(i) **सूचना की प्रकृति (The Nature of Information)**–ICT में 'I' से अभिप्राय है 'सूचना' (Information) जिसमें शामिल है, सूचना का अर्थ एवं मूल्य (Meaning and Value of Information), सूचना को कैसे नियंत्रित किया जाता है, ICT की सीमाएँ आदि।

(ii) **सूचना का प्रबंधन (Management of Information)**–इसमें शामिल किया जाता है–आँकड़ों को कैसे प्राप्त (Capture) किया जाता है, प्रभावशाली प्रयोग के लिए उसका कैसे सत्यापन और भंडारण (Verification and Storage) किया जाता है, व्यवस्था (Manipulation), प्रोसैसिंग (Processing) और सूचना का वितरण (Distribution of Information)। सूचना को सुरक्षित रखना (Keeping Information Secure), सूचना को बाँटने के लिए नेटवर्क डिज़ाइन करना (Designing Network to Share Information)।

(iii) **सूचना प्रणालियों की व्यूह रचना (Information Systems Strategy)**–इससे यह विचार किया जाता है कि ICT का व्यापार या संगठन में लक्ष्यों और उद्देश्यों को हासिल करने के लिए किस प्रकार प्रयोग किया जाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ICT में वह कोई भी उत्पाद शामिल होगा जो सूचना को इलैक्ट्रॉनिक तरीके से डिजिटल रूप में भंडारण, पुनः उत्पादन, व्यवस्थित, स्थानान्तरण या ग्रहण करेगा।

(ICT covers any product that will store, retrieve, manipulate, transmit or receive information electronically in a digital form), जैसे व्यक्तिगत कम्प्यूटर (Personal Computers), डिजिटल टेलीविजन, ई-मेल, रोबोट, विडियो तथा ऑडियो कान्फ्रैंसिंग, डिजिटल लायब्रेरी आदि।

शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण की उपयोगिता
(Advantages of Information and Communication Technology in Education or ICT)

शिक्षा के क्षेत्र में ICT की उपयोगिता निम्नलिखित है–

1. भंडारण (Storage)–ICT के प्रयोग द्वारा सूचनाओं का भंडारण (Store) करना सुगम हो गया है। इस भंडारण के कारण सूचनाओं की प्राप्ति भी सुगम हो गई है। सूचनाओं की प्राप्ति एवं भंडार के परिणामस्वरूप समस्याओं के समाधान में भी सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ–इंटरनेट का प्रयोग। इटरनेट तो आजकल सूचनाओं का भंडार सिद्ध हो रहा है। सी.डी., डी.वी.डी., फ्लापी आदि भी सूचनाओं के भंडार में योगदान करती हैं। इन सभी साधनों के विकास के परिणामस्वरूप पुस्तकालयों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। विभिन्न पुस्तकालयों की पुस्तकों को ई-पुस्तकों (E-Books) के रूप में बदल कर इंटरनेट के माध्यम से विद्यार्थी और शिक्षक इन पुस्तकों का लाभ उठा सकते हैं।

2. विदेशी भाषाओं का अधिगम (Learning of Foreign Languages)–विदेशी भाषाओं को सीखने के लिये केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। इसके लिये ICT का प्रयोग प्रभावी सिद्ध हो रहा है। इस सम्बन्ध में भाषा-प्रयोगशालाएँ, दूर संचार, विडियो कान्फ्रैंसिंग, आडियो कान्फ्रैंसिंग, मल्टीमीडिया स्पीकरों आदि का प्रयोग संभव हो पाया है। इस दृष्टि से भाषाओं को सीखना, विशेषकर विदेशी भाषाओं को सीखना अब उतना कठिन नहीं रह गया।

3. शैक्षिक अनुसंधान (Educational Research)–आजकल ICT ने अनुसंधान कार्य को अधिक सरल बना दिया है। हर, अनुसंधान कार्य में विशेष प्रकार की तथा विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ तथा आवश्यकताएँ बाधित होती हैं। शर्त यह भी है कि ये सूचनाएँ वास्तविक और विश्वसनीय होनी चाहियें। क्योंकि अनुसंधान कार्य में से परिणाम निकालने में इन सूचनाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ICT द्वारा इन सूचनाओं को प्राप्त करके अनुसंधान कार्य को शीघ्रता से अंजाम तक पहुँचाया जा सकता है। अतः अनुसंधान के क्षेत्र में ICT का सहयोग दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

4. प्रबन्धन (Management)–आजकल प्रबन्धन, नियोजन किसी भी क्षेत्र का हो, ICT के सहयोग के बिना निसहाय से दिखाई पड़ता है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्धन ICT पर आधारित हो रहा है तथा इसका प्रयोग प्रबन्धकों के लिये वरदान सिद्ध हो रहा है। प्रबन्धन में भी विभिन्न सूचनायें चाहिए जो कि ICT द्वारा क्षेत्रों में उपलब्ध हो जाती हैं। जिसके परिणामस्वरूप प्रबन्धन का कार्य अधिक सुचारु रूप से चलाने में मदद मिलती है। स्कूलों में प्रवेश सम्बन्धी सूचनाएँ, पाठ्यक्रम सम्बन्धी सूचनाएँ, शोध कार्य सम्बन्धी सूचनाएँ तथा अध्यापकों के वेतन आदि सम्बन्धी सूचनाएँ ICT के माध्यम से कुछ ही क्षणों में आँखों के सम्मुख आ जाती हैं।

5. शिक्षण-प्रक्रिया (Teaching Process)–ICT द्वारा शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहायता मिलती है। आधुनिक विधियों द्वारा अध्यापक पाठ्य वस्तु को अधिक जीवन्त बना कर विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है। तकनीकी की सहायता से दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग बहुत ही सजीव ढंग से किया जा सकता है। कम्प्यूटर के प्रयोग से अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को बेहतर ढंग से विद्यार्थियों तक पहुँचा सकता है। इस दृष्टि से अध्यापक बाल-केन्द्रित शिक्षा के उद्देश्य को इस माध्यम में प्राप्त कर सकता है।

6. विशिष्ट बालकों की शिक्षा (Education of Special Children)–विशिष्ट बालकों को शिक्षा प्रदान करना इतना सरल कार्य नहीं है। क्योंकि ये बालक सामान्य बालकों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। विशेषकर अधिगम (Learning) की दृष्टि से। लेकिन ICT के बढ़ते हुए प्रयोग ने इन बालकों की शिक्षा को एक नया मोड़ दिया है। सम्प्रेषण की नई विधियों व उपकरणों की सहायता से विशिष्ट बालकों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रक्रिया कुछ हद तक सरल हो गई है और प्रभावशाली भी। मूक व बधिर बालकों के लिये वीडियो कान्फ्रैंसिंग एक अच्छा तरीका है। नेत्रहीन बच्चों के लिये ब्रेल-लिपि पर आधारित कम्प्यूटरों का निर्माण किया जा रहा है। इसी प्रकार इनके लिये सॉफ्टवेयरों द्वारा भी इनकी आवश्यकताओं को पूरा किया जा रहा है।

7. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (Pre-Primary Education)–पूर्व-प्राईमरी स्तर की शिक्षा में ICT का प्रवेश भी प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है। इन छोटे बच्चों की शारीरिक गतिशीलता (Psychomotor Control) के लिये अनेक इलैक्ट्रॉनिक खिलौनों का प्रयोग बच्चों को खेल ही खेल में दिखाया जाता है। जिससे ये बच्चे विज्ञान के प्रति अपनी जिज्ञासा के विकास का प्रयत्न करते हैं।

8. **शिक्षा तंत्र में परिवर्तन (Changes in System of Education)**–ICT ने पूरे शिक्षा तंत्र में क्रांति लाकर उसमें व्यापक परिवर्तन कर दिये हैं, जैसे–

(i) शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षण की बजाये अधिगम प्रक्रिया को मुख्य केन्द्र बना दिया है। इससे सक्रिय अन्तःक्रियाओं की संभावनाएँ बढ़ गई हैं।

(ii) कक्षा का वातावरण अरुचिकर और एक तरफा नहीं रह पाया।

(iii) विद्यार्थी सूचनाएँ अपने ढंग से प्राप्त कर सकता है तथा अपनी गति से सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है।

(iv) इसमें इंटर-एक्टिव मॉडल (Inter-active Model) का अधिकतम प्रयोग होता है अर्थात् अध्यापक और विद्यार्थी की अन्तर्क्रिया।

(v) विद्यार्थी पर ज्ञान अर्जन का उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है।

(vi) शिक्षकों की भूमिका में भी ICT ने परिवर्तन ला दिया है। अध्यापक ज्ञान के स्रोत न रहकर वे विद्यार्थी के साथ सक्रिय ज्ञान प्राप्त करने वाले साथी की भूमिका में आ गये हैं।

(vii) इस तकनीक का योगदान सेवाकालीन तथा सेवा पूर्व दोनों प्रकार की शिक्षण गतिविधियों में देखा जा सकता है।

...न एवं सम्प्रेषण की सीमाएँ
...imitations of Information and Communication Technology or ICT)

ICT के उपयोग में कुछ कठिनाइयाँ भी आती हैं जिनसे इसका उपयोग सीमित हो जाता है। ICT की मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. ICT सम्बन्धी सूचनाएँ अभी इस देश के स्कूलों में पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि कई स्कूलों के लिये इन्हें खरीद पाना संभव ही नहीं और न ही उनकी देखभाल करना। इन परिस्थितियों में ICT का प्रयोग ऐसे स्कूलों में संभव ही नहीं।
2. ICT का प्रयोग संदेह एवं डर पैदा करता है कि इस तकनीकी के प्रयोग से उनके हाथ में कुछ नहीं रहेगा।
3. कुछ सीमा तक स्कूल के विद्यार्थी भी ICT का प्रयोग करने में रुचि नहीं रखते। ऐसा शायद ICT के ज्ञान के अभाव के कारण तथा उचित मार्गदर्शन के अभाव के कारण है।
4. शिक्षक भी अपनी पुरानी पद्धति में परिवर्तन नहीं करना चाहते। वे रूढ़िवादिता में जकड़े रहना पसंद करते हैं।
5. ICT में शिक्षकों के प्रशिक्षण के अभाव के कारण भी इसका प्रयोग स्कूलों में सीमित ही है। इसके लिये अध्यापकों को प्रशिक्षण स्तर पर ही तैयार करके ICT के प्रयोग को सुनिश्चित किया जा सकता है।
6. स्कूलों में उपलब्ध सीमित सूचनाओं की पृष्ठभूमि हमें इसी बात की ओर संकेत करती है कि अभी हमारे अधिकतर स्कूल ICT के प्रयोग के लिये पूर्ण रूप से तैयार नहीं हुए।
7. स्कूल प्रशासन, अधिकारी, मैनेजमैंट आदि भी स्कूलों में ICT के प्रयोग के बारे में संवेदनशील नहीं हैं। इस बारे में उनकी उदासीनता के परिणामस्वरूप ICT का प्रयोग सीमित-सा दिखाई देता है। इसका प्रचार तो बहुत है लेकिन इसका प्रयोग अभी हर स्कूल की दहलीज़ पार नहीं कर पाया।

◆◆◆

गैर सरकारी संगठन (Non-Government Organizations))

23. गैर-सरकारी संगठन से आप क्या समझते है? शिक्षा में गैर-सरकारी संगठनों की भागेदारी का क्या लाभ है? (What do you mean by NGO's? What is the benefits of participation of NGO's in education?)

उत्तर–गैर-सरकारी संगठन वे संगठन होते हैं जो स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं। गैर-सरकारी संगठन एक स्वतंत्र स्वायत संगठन होता है जिसमें लोग किसी सामान्य उद्देश्य के लिए मिल-जुलकर एक साथ कार्य करते हैं। इस संगठन पर किसी प्रकार का बाह्य नियंत्रण नहीं होता।

सामान्य तथा असमर्थ बालकों की शिक्षा में भी गैर-सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गैर-सरकारी स की महत्वपूर्ण होती है। गैर-सरकारी संगठनों ने असमर्थ व्यक्तियों के प्रशिक्षण एवं पुनर्वास हेतु सराहनीय सहयोग दिया है समय लगभग 400 महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन है जो असमर्थ व्यक्ति के अत्थान के लिए कार्य कर रहे हैं। इनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. महावीर विकलांग केन्द्र जयपुर
2. नेवेदिक प्रास्थैरिक केन्द्र चंडीगढ़
3. ठाकुर हरिप्रसाद मानसिक मन्दित संस्थान हैदराबाद।

इस क्षेत्र में पाण्डेय तथा आडवाणी ने 1995 में इस दिशा में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थानों की सूचि प्रस्तुत की। गैर-स संगठन असमर्थ बालकों की शिक्षा के लिए नवीन व्यूहरचनाओं का प्रयोग करके इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये सेवाओं के साथ अनेक योजनाएँ चला रहे हैं ताकि सामान्य तथा असमर्थ बालकों की शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सके।

सामुदायिक केन्द्रों का महत्व–यह एक स्वयं सेवी संगठन है। छोटे गाँव को तो एक सामुदायिक केन्द्र का रूप दि सकता है जबकि बड़े गाँवों में छोटे-छोटे कई सामुदायिक केन्द्र बनाये जा सकते हैं। शहरों में भी इनका गठन किया जा है। प्रत्येक केन्द्र अपने क्षेत्र के प्रौढ़ों को आवश्यकता पर आधारित शिक्षा देने का कार्य करता है। उनमें सामाजिक व सांस चेतना पैदा करता है तथा राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करता है। यदि ये केन्द्र अपने आर्थिक साधन स्वयं तो ठीक रहता है। यदि विभिन्न स्तरों के प्रौढ़ शिक्षा अधिकारी व अन्य स्वयंसेवी संगठन इन्हें अपना सहयोग दें तो यह कार्य बहुत अच्छी प्रकार से सम्पन्न कर सकते हैं। इन केन्द्रों के लिए समय, स्थान आदि का चुनाव करते समय शिक्षार्थि सुविधा को ध्यान में रखा जाना चाहिए। शिक्षण-कार्य से पूर्व समुदाय का सर्वेक्षण करके उसकी शैक्षिक स्थिति का अनुमा लेना उचित रहता है। महिलाओं की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

अन्य स्वयंसेवी संगठन (Other Voluntary Organisations)–समाज में अनेक स्वयंसेवी संगठन होते हैं वे से स्वयम् को निरौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों के साथ जोड़ सकते हैं। इनके कार्यकर्त्ता बड़े उत्साहित होते हैं। वे एक जाकर आस पास के कई निरक्षर प्रौढ़ों को वहीं एकत्रित कर लेते हैं और उनको शिक्षा देते हैं। इस प्रार ये निरौपचारिक शि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संगठन शिक्षा के अतिरिक्त उन्हें चिकित्सा व स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी देने, अपनी रू अन्धविश्वासों को छोड़ने तथा कार्य करने की नवीन एवं वैज्ञानिक विधियों को अपनाने की भी प्रेरणा देते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि निरौपचारिक शिक्षा में जुटी उपर्युक्त संस्थाएँ या केन्द्र देश से निरक्षरता का उन्मूल में निश्चय ही सफल होंगी पर इसके लिए इन्हें शिक्षा के सभी औपचारिक व अनौपचारिक साधनों का सहयोग मिलना क्योंकि एक तो ये सभी साधन स्वयम् एक निरौपचारिक या प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के रूप में कार्य कर सकते हैं दूसरे ये अन्य को इसके लिए सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

◆◆◆

2.10 सामान्य समाज समूह, अध्यापक संगठन, परिवार तथा स्थानीय समुदाय (Civil Society Groups Teacher Organizations, Family and Local Community)

24. सामान्य समाज समूह तथा अध्यापक संगठन के बारे में आप क्या जानते हैं? सामान्य समाज समूह के कार्यों का वर्णन क (What do you mean by civil society groups and teacher organization. Des the functions of civil society groups.)

उत्तर–समूह का अर्थ (Meaning of a group)–समाज एक अत्यन्त बड़ी व जटिल किन्तु संगठित व्यव इस समाज के अन्तर्गत बहुत से उप-समाज या उप-समूहों की भागीदारी होती है। तथा ये उप-समाज और उप-समूह अ सम्बन्धित होते हैं। यह अति आवश्यक है कि पहले हम उन समूहों की सरंचना तथा कार्यों की जानकारी प्राप्त करें जिनसे की रचना होती है।

साधारण भाषा में व्यक्तियों के किसी भी संग्रह या इक्ट्ठे को समूह कहा जाता है। लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से या व्याख्या है। समाज मनोविज्ञान में व्यक्तियों के किसी भी इक्ट्ठे या एकत्रीकरण को समूह की संज्ञा नहीं दी जा सकती। व

के किसी संग्रह को समूह की संज्ञा देने के लिये यह आवश्यक है कि उन इक्ट्ठे हुए व्यक्तियों में अन्तः क्रियात्मक सम्बन्ध हो। इन इक्ट्ठे हुए व्यक्तियों में आपसी अन्तःक्रिया ही उनके सम्बद्धता का आभास कराती है।

किसी भी व्यक्ति के अनुभवों और व्यवहार को उसके सामाजिक वातावरण के संदर्भ में समझने के लिये सामाजिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की संगठित सामाजिक प्रणाली (Organized Social System) में भागीदारी को बहुत महत्त्व देते हैं।

समाज मनोविज्ञान में 'समूह' की एक विशिष्ट परिभाषा है। यह मात्र व्यक्तियों की संख्या ही नहीं होता, बल्कि यह उन व्यक्तियों की संख्या होती है जो एक संगठित प्रणाली या व्यवस्था में भाग लेते हैं।

(The term group refers not simply to a plural number of individuals, but specifically to a number of individual who are participants in an organized system)–J.W. McDavid & H. Harari

एक सामाजिक समूह व्यक्तियों की संगठित व्यवस्था या प्रणाली है तथा एक प्रणाली या व्यवस्था संगठित अंशों का एक सेट होता है।

(A social group is an organized system of individual and a system is a set of organized parts)

किसी गली में कुछ लोगों का इक्ट्ठे (Assemblage) बस की प्रतीक्षा में खडा हो तो वह मात्र एक 'इक्ट्ठे' ही होगा। इस इक्ट्ठे में एक संगठित व्यवस्था की विशेषताओं का अभाव होने के कारण वह एक 'समूह' नहीं कहला सकता। जब बहु-संख्या (Plural) एक संगठित व्यवस्था की विशेषताओं का प्रदर्शन करें तो वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक समूह होगा। मनोवैज्ञानिक समूहों के लिये व्यक्तियों का एकत्रित होना अनिवार्य नहीं। एक व्यक्ति स्वयं की पहचान दूसरों के साथ करता है तथा संगठित प्रणाली में भागीदार बनकर प्रत्यक्ष रूप से आमने-सामने आये बिना भी व्यवहार कर सकता है। किसी बड़ी युनिवर्सिटी में कोई छात्र किसी संगठित सामाजिक व्यवस्था के रूप में किसी छात्र-संस्था का मनोवैज्ञानिक रूप से भाग ले सकता है, चाहे वह छात्र-संस्था कभी भी एक ही स्थान पर एकत्रित न हुई हो।

क्रैच, क्रचफील्ड और बेलेची (Krutch, Crutch field and Balachi, 1962) के अनुसार 'दो या दो से अधिक व्यक्तियों का वह संग्रह जिनमें निम्न विशेषताएं हो; मनोवैज्ञानिक समूह कहलाता है –

(i) समूह के सदस्यों का व्यवहार एक दूसरे पर परस्पर इस प्रकार निर्भर करें कि एक सदस्य का व्यवहार पहले व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता हो और दूसरे सदस्य का व्यवहार पहले व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता हो।

(ii) समूह के सदस्य एक विचाराधारा में सहभागी हों। **(A social group is a given aggregate of people playing interrelated roles and recognized in themselves of others as a unit of interaction).**

कैटल (Cattle) के अनुसार 'समूह व्यक्तियों का जोड़ है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सभी सदस्यों का सहयोग लिया जाता है।'

(Group is an aggregate of organisms in which the existence of all is utilized for satisfaction of some needs of each.—Cattle.)

जेम्स ड्रीवर (James Drever, 1960) के अनुसार, 'सामाजिक समूह व्यक्तियों' का वह संग्रह है जिसमें व्यक्ति किसी मात्रा तक इकाई के रूप में अनुभव करते हैं या कार्य करते हैं।'

(Social group is a collection of individuals feeling and acting in some degree as a unit.—James Drever, 1960)

आइजैक्क व साथियों (Eysenck and other 1972) के अनुसार, 'समूह व्यक्तियों का वह जोड़ है जिसमें व्यक्ति किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अन्तःक्रिया करते हैं।'

(An aggregate of individuals interaction to achieve common goal from a group)

विलियमस (Williams, 1951) के अनुसार, 'सामाजिक समूह व्यक्तियों का वह निश्चित संग्रह है जिसमें वे परस्पर सम्बन्धित कार्य करते हैं तथा जो अपने द्वारा पर दूसरों के द्वारा परस्पर अन्तःक्रिया की इकाई के रूप में मान्य होते हैं।'

[Social group is a given aggregate of people playing inter–related roles and recognized in themself of others as a unit of interaction.—R.B. Williams (1951)]

किसी भी संगठन की तीन विशेषताएं सामाजिक समूह को परिभाषित करती हैं-

(i) वह व्यवस्था या प्रणाली एक इकाई के रूप में कार्य करती हैं।

(ii) व्यवस्था या प्रणाली के भीतर के तत्त्व आपस में सम्बन्धित होते हैं।

(iii) व्यवस्था के पास इन तत्त्वों को नियमित करने की विधि होती है।

अतः समाज मनोवैज्ञानिक के लिये समूह की परिभाषा इस प्रकार हुई- एक समाज मनोवैज्ञानिक समूह दो या अधिक व्यक्तियों की एक संगठित व्यवस्था या प्रणाली है जो परस्पर सम्बन्धित होते हैं ताकि वह व्यवस्था या प्रणाली कोई कार्य कर सके, इसके सदस्यों के पास भूमिका-सम्बन्धों के स्टैंडर्ड सैट होते है तथा इनके पास मानकों का एक सैट होता है जो समूह तथा इसके प्रत्येक सदस्य के कार्यों को नियमित या कंट्रोल कर सकें।'

(These essential properties of organization define a social group –

(i) The system performs some function as a unit ;

(ii) The elements within the system are inter– related.

(iii) The system has mechanisms for regulating its elements. There fore the working definition of a group is : ..... A social psychological group is an organized system of two or more individuals who are inter–related so that the system performs some function, has a standard set of role–relation ships among its members, and has a set of norms that regulate the function of the group and each its members.–McDavid & Harari)

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से हम देखते हैं कि एक सामाजिक समूह में-

(i) इक्ट्ठेपन की स्थिति में व्यवहार किया जाता है।

(ii) एक समूह में वे व्यक्ति ही शामिल होते हैं जिनमें कुछ मानकों (Norms) तथा मूल्यों (Values) में कुछ समानता होती हैं।

(iii) एक समूह में जो सदस्य होते हैं उनकी भूमिकाओं या कार्यों में आपस में सम्बन्ध (Inter–related) होता है। यह विशेषता व्यक्तियों के इक्ट्ठे में नहीं होती। यही कारण है कि बस में इक्टठे बैठे हुए व्यक्तियों या सड़क पर जा रहे व्यक्तियों को 'समूह' नहीं कहते। व्यक्तियों का इक्ट्ठे तभी 'समूह' बनेगा जब उनमें 'अन्तःक्रिया' होगी।

(iv) समूह अन्तःक्रिया का प्रतिफल (Product of interaction) होते हैं।

समूह के प्रकार *(Types of Groups)*

चार्ल्स कूले (Charles Cooley, 1902) ने समूहों को निम्नलिखित दो वर्गों में बांट दिया -

1. प्राथमिक समूह (Primary Group)
2. द्वितीयक समूह (Secondary Group)

1. प्राथमिक समूह (Primary Group) – इन समूहों में व्यक्तियों में आपने-सामने का तथा बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध होता है तथा इस व्यक्ति के सामाजिक आदर्शों (Social Ideals) की तथा सामाजिक प्रकृति की रचना होती है। (Its characteristics are intimate face to face association and forms the social nature and ideals of the individuals).

उदाहरण : खेल की टीम, परिवार, पड़ौस आदि। इस प्रकार के समूह में व्यक्ति एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं तथा उनमें सहयोग की भावना होती है। बालक के विकास में प्राथमिक समूहों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है तथा सामाजीकरण में बहुत सहायक होते हैं।

प्राथमिक समूह की विशेषताओं को भी हम दो वर्गों में बांट सकते हैं–

(a) बाहरी विशेषताएं (Exteral characteristics)

(b) आन्तरिक विशेषताएं (Internal characteristics)

(a) बाहरी विशेषताएं –

(i) समूह में समूह के सदस्यों का सम्बन्ध घनिष्ट होने के कारण आमने-सामने का हो जाता है।

(ii) प्राथमिक समूहों के सदस्यों की संख्या कम होने के कारण ये आकार में छोटे होते हैं। बल्कि यह कहना चाहिए कि इन समूहों में सदस्यों की संख्या सीमित ही होती हैं।

(iii) प्राथमिक समूह अधिक स्थायी होते हैं क्योंकि इनके उद्देश्य सामान्य प्रकृति के होते हैं।

(iv) प्राथमिक समूहों के कार्य असीमित होते हैं, इसीलिये इनमें सम्बन्धों की प्रकृति नहीं होती।

(v) प्राथमिक सदस्यों में सम्बन्ध अति घनिष्ट होते हैं।

(b) आन्तरिक विशेषताएं (Internal Characteristics) –

(i) प्राथमिक समूहों में जो सम्बन्ध होते हैं वे वैयक्तिक (Personal) होते हैं। हर सदस्य का सम्बन्ध दूसरे सदस्य से प्रत्यक्ष रूप से होता है।

(ii) प्राथमिकता सम्बन्धों में पूर्णता पाई जाती है। प्राथमिक समूह में सदस्य अपने कार्य को पूर्ण इच्छा, एवं शक्ति से करता है। क्योंकि इसमें स्वार्थ के अंश नहीं होते।

(iii) प्राथमिक समूहों में सम्बन्ध घनिष्ट एवं जाने-पहचाने होने के कारण उन्हें नियंत्रण में रखना संभव होता है।

(iv) प्राथमिक समूह में सम्बन्ध स्वाभाविक और ऐच्छिक होते हैं। व्यक्ति अपनी इच्छा से सम्बन्ध स्थापित करता है तथा अपने समूह के लिए अपनी जान पर भी खेल जाता है।

(v) प्राथमिक समूहों के सदस्यों में घनिष्टता होने के कारण उनके उद्देश्य भी एक समान होते हैं तथा उनकी इच्छाएं भी एक जैसी ही होती है। वे दूसरों के बारे में भी सोचते हैं अर्थात् दूसरों का सुख-दुख उन्हें अपना लगता है। जैसे, जब परिवार का कोई सदस्य यदि किसी कष्ट में होता है तो परिवार के अन्य सभी सदस्य उसकी हर प्रकार से सहायता करते हैं।

प्राथमिक समूह का महत्त्व *(Importance of primary group)*

(i) अच्छे गुणों का विकास प्राथमिक समूहों में रहकर ही हो सकता है जैसे - सहयोग, सहानुभूति, स्नेह, प्रेम, त्याग की भावना आदि।

(ii) सामाजिक संगठन प्राथमिक समूहों पर ही निर्भर करते हैं। इन का विघटन का अर्थ होगा-समाज का विघटन।

(iii) प्राथमिक समूह की सहायता से सांस्कृतिक निरन्तरता बनी रहती है। अर्थात् इन समूहों के माध्यम से संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण होता है।

(iv) प्राथमिक समूहों में रहकर व्यक्ति की कार्य क्षमता भी बढ़ती है क्योंकि समूह में रहकर व्यक्ति अन्य सदस्यों से प्रेरणा अर्जित करता है। व्यवहार को नियंत्रित करने की प्रेरणा विधि बहुत लाभकारी होती है जोकि सामाजीकरण के लिये भी अति आवश्यक है।

2. द्वितीयक समूह (Secondary Groups) – द्वितीयक समूहों में सदस्यों के सम्बन्ध वैयक्तिक (Personal) नहीं होते बल्कि बहुत ही औपचारिक होते हैं।

(Secondary group is one in which relations among members of the group are relatively cool, impersonal, rational and formal). –McDavid & Harari

इन द्वितीयक समूह का आकार प्राथमिक समूहों से बड़ा होता है। इनमें व्यक्ति के प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होकर अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं। इन समूहों में सद्भावना, प्रेम आदि का अभाव होता है। इनमें सम्बन्ध भी स्थायी नहीं होते।

कूले (Cooley, 1907) के अनुसार 'द्वितीयक समूह वह समूह है जिनमें घनिष्टता के अभाव के अतिरिक्त सामान्यतः का विशेषताओं की कमी भी होती है जो प्राथमिक एवं अर्द्ध-प्राथमिक समूहों में पाई जाती है।

(These groups wholly lacking in intimacy of association and usually in most of the other primary and quasi–primary characteristics) –Cooley (1907)

द्वितीयक समूह भी दो प्रकार के होते हैं–

(a) सांस्कृतिक आधार पर गठित समूह (Groups Organized on the cultural basis) – जैसे राष्ट्रीय समूह, समुदाय, प्रादेशिक समूह कारपोरेशन, सामाजिकता इत्यादि।

(b) सांस्कृतिक आधार के अतिरिक्त समूह (Groups organized on other than cultural basis) – जैसे भीड़, प्रजाति, आयु समूह, लिंग समूह इत्यादि।

द्वितीयक समूह की विशेषताएं (Characteristics of secondary groups) –

(i) द्वितीयक समूहों का आकार बड़ता होता है इसके सदस्यों की संख्या बहुत होती है।

(ii) इन समूहों के सम्बन्ध अव्यक्तिगत (Impersonal) होते हैं। वे एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते। उदाहरणार्थ, एक बहुत बड़ी संस्था के कर्मचारी या फैक्टरी के कर्मचारी हर रोज एक दूसरे से मिलते तो हैं लेकिन कोई भी किसी को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता।

(iii) इन समूहों के सदस्यों में घनिष्टता की कमी रहती है।

(iv) द्वितीयक समूहों के सदस्यों के उद्देश्य भी भिन्न भिन्न होते हैं।

(v) इन समूहों का फैलाव बहुत ही विस्तृत क्षेत्र में होता है।

(vi) द्वितीयक समूह के सदस्यों के सम्बन्ध बहुत ही औपचारिक किस्म के होते हैं अर्थात् इन समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध कुछ निश्चित नियमों, कानूनो, परम्पराओं तथा कार्यप्रणाली के अनुसार नियंत्रित होते हैं।

(vii) इन समूहों की स्थापना जान बूझ कर की गई होती है।

(viii) इन समूहों में एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व बहुत ही सीमित सा होता है। द्वितीयक समूहों के सदस्य आत्मनिर्भर होते हैं।

(ix) द्वितीयक समूहों के सदस्य आत्मनिर्भर होते हैं।

(x) इन समूहों के सदस्यों में प्रतिस्पर्धा (Competition) रहती है।

(xi) द्वितीयक समूह किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु बनाये जाते हैं।

(xii) इन समूहों में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण इनमें प्रत्यक्ष सम्बन्ध संभव नहीं होता।

(xiii) इन समूहों में चूंकि घनिष्टता नहीं होती, अतः इनके सदस्यों में प्रेम भावना का भी अभाव रहता है।

(xiv) द्वितीयक समूह प्राथमिक समूहों की तुलना में कम स्थायी होते हैं।

(xv) सम्पूर्ण जीवन की व्यवस्था द्वितीयक समूहों में संभव नहीं।

द्वितीयक समूह का महत्त्व (Importance of Secondary Groups) –

(i) द्वितीयक समूह सभ्यता के विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में सहायक होते हैं। समूह में विभिन्न व्यक्तित्त्व वाले व्यक्ति होने के कारण वे अपना प्रभाव समाज पर डालते हैं।

(ii) इन समूहों में व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है, अतः उनके कार्यों एवं व्यवहारों को नियंत्रित करने हेतु द्वितीय नियंत्रण प्रणाली का प्रयोग किया जा सकता है। अर्थात् पुलिस, कानून आदि की सहायता ली जा सकती है।

(iii) इन समूहों का क्षेत्र विस्तृत होता है इनमें आदान-प्रदान का क्षेत्र भी विस्तृत होता है। ये समूह व्यक्ति की कई आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(iv) द्वितीयक समूह व्यक्ति की कुशलता और योग्यता को विकसित करने में अपना योगदान करता है। द्वितीयक समूह में ही व्यक्ति विशेषज्ञ बनता है। उदाहरणार्थ- वकील, डॉक्टर, अध्यापक आदि।

न्यूकाम (Newcomb, 1930) ने निम्नलिखित दो प्रकार के समूह बताये हैं-

(A) सदस्यता समूह (Membership Group) (B) संदर्भ समूह (Reference Group)

(A) सदस्यता समूह (Membership Group) – यह वह समूह है जिससे व्यक्ति का औपचारिक रूप से सम्बन्ध होता है - नाम द्वारा या शारीरिक रूप से। अर्थात् कोई भी व्यक्ति मात्र अपना नाम सूची में लिखवा कर उस समूह का सदस्य बन सकता है या मात्र समूह के अन्य सदस्यों के बीच शारीरिक रूप से उपस्थित होकर समूह का सदस्य बन सकता है। वह व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से उस समूह में भागीदार नहीं होता।

(B) संदर्भ समूह (Reference Group) – इस शब्द का प्रयोग उस समूह के लिये किया जाता है जिसमें व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से भागीदार होता है अर्थात् वह समूह के उदेश्य के प्रति निष्ठावान होता है संगठन में एक विशेष भूमिका ग्रहण करता है तथा संगठन के नियंत्रक, मानकों (Regulative norms) का पालन करता है। जिनिंग (Jennings) ने इन दो समूहों के लिये दो शब्दों का प्रयोग किया है। सदस्यता समूह के लिये सामाजिक समूह (Socio–Group) तथा संदर्भ समूह के लिये मनोवैज्ञानिक समूह (Psycho–group) शब्दों का प्रयोग किया है।

समूहों का एक और वर्गीकरण है। इसके अनुसार समूह निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं–

(A) औपचारिक समूह (Formal Groups)

(B) अनौपचारिक समूह (Informal Group)

(A) औपचारिक समूह (Formal Group) – इस तरह की विशेषताओं का कथन औपचारिक रूप से किया जाता है उदाहरणार्थ - कोई कमेटी।

(B) अनौपचारिक समूह (Informal Group) – इनमें किसी प्रकार की विशेषताओं का कथन नहीं होता। जैसे, पड़ोस के बच्चे जो नियमित रूप से इक्ट्ठे खेलते हैं।

औपचारिक समूहों (Formal Group) में भूमिकाएं भी औपचारिक होती हैं, जैसे मिलिटरी रैंक सिस्टम (Military Rank System) अनौपचारिक समूहों में भूमिकाएं भी अनौपचारिक होती हैं।

उपरोक्त समूहों के अतिरिक्त कुछ अन्य समूहों के प्रकार भी होते हैं जो कि निम्नलिखित है–

(i) स्थायी एवं अस्थाई समूह (Permanent and Temporary Group)—वे समूह जो लम्बे समय तक रहते स्थाई समूह कहलाते हैं। जिन समूहों का अस्तित्त्व थोड़े समय के लिये होता है उन्हें अस्थायी समूह (Temporary Group) कहते हैं। स्थायी समूहों में सहयोग, त्याग आदि की अधिक मात्रा पाई जाती है तथा समूह को स्थाई रखने वाली अन्य विशेषताएं भी इन में पाई जाती हैं। अस्थायी समूहों में ऐसा कुछ नहीं पाया जाता।

(ii) आकस्मिक एवं प्रयोजनात्मक समूह (Accidental and Purposive Groups)– मैक्डूगल ने यह वर्गीकरण किया है। आकस्मिक समूह वे होते हैं जो अचानक और बिना किसी इच्छा के बन जाते हैं। जैसे रेलगाड़ी के डिब्बे की भीड़ में ऐसे समूह बनते हैं। ये समूह प्रायः अस्थाई होते हैं। इस समूह के सदस्यों में सहयोग की भावना पाई जाती है।

प्रयोजनात्मक समूह में कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। ऐसे समूहों का निर्माण कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है। जरुरी नहीं कि ऐसे समूहों की बहुत आवश्यकता हो।

(iii) संगठित एवं असंगठित समूह (Organized and Unorganized Group)– संगठित समूह कुछ विशेष नियमों के आधार पर बनते हैं। सदस्यों को नियमों के अनुसार अनुशासित होकर रहना पड़ता है। ऐसे उद्देश्य कुछ निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये बनाये जाते हैं। ऐसे समूहों का निर्माण समाज की प्रगति और उत्थान के लिये किया जाता है।

असंगठित समूहों की विशेषताएं संगठित समूहों की विशेषताओं के विपरीत होती है। इन समूह के सदस्यों में घनिष्टता और अपनी आकर्षण कम होता है। उदाहरण, भीड़, सिनेमा या आंदोलनकारी लेगा।

(iv) गतिशील एवं स्थिर समूह (Mobile and Immobile group) – गतिशील समूहों का कोई एक निश्चित स्थान नहीं होता। एक स्थान पर कुछ समय रहने के बाद यह समूह किसी दूसरे स्थान पर चला जाता है। इस प्रकार के समूह गरीबी का शिकार होते हैं। उदाहरणार्थ :- जन जातियां एवं कबीले अपना स्थान बदलते रहते हैं। लेकिन स्थिर समूह एक ही स्थान पर रहते हैं तथा इनकी विशेषताएं गतिशील समूहों के विपरीत होती है। गतिशील समूह अधिक सुनियोजित एवं संगठित होते हैं। इन समूहों की अपनी प्राचीनता एवं पहचान होती है।

(v) अन्तः और बाहरी समूह (In and Out Groups) – अन्तः समूह शब्द का प्रयोग सबसे पहले सन् 1970 में समनर (Sumner) ने किया। 'अन्तः समूह' (In group) को 'हम-समूह' (We group) भी कहा गया है। अन्तः समूह के सदस्य समूह को अपना समूह मानते हैं। इस समूह के सदस्यों के बीच सहानुभूति होती है। इन सदस्यों के हित आपस में जुड़े हुए होते हैं। ये सदस्य संवेगात्मक रूप से भी बंधे हुए होते हैं। एक-दूसरे के प्रति विश्वास, मित्रता और सहयोग होता है। इस समूह के सदस्य अपने धर्म, संस्कृति तथा भाषा आदि को श्रेष्ठ मानते हैं। अन्तः समूह के सदस्य अहंवादी भी होते हैं। इन सदस्यों का व्यवहार पक्षपात पूर्ण भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, परिवार, खेल के समूह इत्यादि।

बाहरी समूह (Out groups) दूसरों का समूह (Others group) भी कहलाता है। इस समूह के सदस्य आपस में संवेगात्मक रूप से बंधे हुए नहीं होते। इनमें मित्रता, सहयोग, विश्वास, सहानुभूति आदि का अभाव रहता है। उदाहरणार्थ, वे कांग्रेसी हैं, वे मुसलमान हैं आदि।

समूहों के प्रकार

1. → प्राथमिक समूह
2. → द्वितीयक समूह
3. → सदस्यता समूह
4. → संदर्भ समूह
5. → औपचारिक समूह
6. → अनौपचारिक समूह
7. → अन्तः समूह
8. → बाहरी समूह
9. → स्थायी समूह
10. → अस्थायी समूह
11. → संगठित समूह
12. → असंगठित समूह
13. → आकस्मिक समूह
14. → प्रयोजनात्मक समूह
15. → गतिशील समूह
16. → स्थिर समूह

चित्र : समूह के प्रकार

अध्यापक संगठन *(Teacher Organization)*

संगठन अंग्रेजी शब्द Organisation के पर्याय शब्द 'जनता का समूह' को प्रदर्शित करता है।

संगठन का संक्षिप्त आक्सफोर्ड शब्दकोष में अर्थ इस प्रकार है–

(i) किसी वस्तु का व्यवस्थित ढाँचा बनाना।

(ii) किसी वस्तु का आकार निश्चित करना और उसे कार्य स्थिति में लाना।

(iii) संगठन करना अथवा व्यवस्था करना।

विभिन्न विद्वानों ने संगठन का अर्थ समझाने के लिए भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जो अग्रलिखित हैं–

जे. बी. सीयर्स के मतानुसार–"संगठन एक प्रक्रिया है, जिसका संबंध ऐसी व्यवस्था करने से है, जिसमें संपूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम सफलतापूर्वक व्यावहारिक रूप में संपन्न हो सके।"

जे. डी. मुने के मतानुसार–"सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मानवीय संस्था को ही संगठन कहा जा सकता है।"

डिमोक के अनुसार–"संगठन मानव संबंधों तथा व्यवस्था दोनों से संबंधित होता है।"

पिफनर के अनुसार–"संगठन का तात्पर्य व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के बीच वर्गों को, वर्गों के बीच उन संबंधों को व्यवस्थित करना है, जिसमें श्रम का क्रमबद्ध विभाजन किया जाता है।"

लुथर गुलिक के मतानुसार–"संगठन सत्ता का औपचारिक ढाँचा है, जिसके अंतर्गत निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभागीय कार्यों को क्रमबद्ध रूप में विभाजित करना, परिभाषित करना तथा समन्वित करना सम्मिलित होता है।"

अध्यापक संगठन वह संगठन होता है जिसने विभिन्न अध्यापक एक साथ मिलकर शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। अध्यापक संगठन में काम करने से अध्यापकों के अनुशासन, कार्यक्षमता तथा कार्य कुशलता का विकास होता है।

समूह के कार्य *(Functions of a group)*

हर समूह के अपने अपने कार्य होते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कार्यों का वर्णन निम्न प्रकार से है–

1. मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction of basic needs)–हर व्यक्ति एवं समाज की कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं। इन आवश्यकताओं के बिना व्यक्ति का सामाजिक अस्तित्त्व असंभव है। इन आवश्यकताओं में शामिल है–रोटी, कपड़ा, मकान, प्यास, काम, संतुष्टि इत्यादि। इन आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले व्यक्ति के माध्यम से संभव नहीं है, तो समाज ही पूरा कर सकता है। लेकिन समूह द्वारा इनकी पूर्ति प्रत्यक्ष रूप से नहीं होती। ये अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करते हैं। इन मूलभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त और भी आवश्यकताएं मूलभूत हो सकती है। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि एक व्यक्ति के लिये जो आवश्यकताएं मूलभूत होती हैं, यह जरूरी नहीं कि वही आवश्यकताएं दूसरे व्यक्ति के लिये भी मूलभूत हों।

2. सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction of General Needs)–व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की आवश्यकताएं होती है। जिनकी पूर्ति समूह करते हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समूह व्यक्ति, मित्र, मंडली, खेल-समूह, व्यापारिक संघ, धार्मिक समूह, पड़ोस आदि से जुड़ा हुआ होता है। जब की आवश्यकताएं बदल जाती हैं तो समूह का स्वरूप भी बदल जाता है। इसी प्रकार जब किसी समूह का अस्तित्त्व अधिक समय तक बना रहता है तो समूह के सदस्यों की नयी नयी मांगे पैदा होने लगती हैं।

3. प्रबल सदस्यो की आवश्यकताओं की संतुष्टि (Satisfaction of needs of dominant members)–समूह में कुछ सदस्य अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक प्रबल एवं प्रभावशाली होते हैं। समूह में ऐसे प्रबल सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति सबसे पहले की जाती है। समूह के दुर्बल सदस्यों के लिये समूह उतना कार्य नहीं करता। ऐसे सदस्यों का समूह में कोई बोल बाला नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी राजनैतिक पार्टी के प्रमुख नेता को हर जगह मान्यता मिलती है, उनके हर जगह अनेक ही कार्य होते हैं। पार्टी के सदस्यों को अपने नेता की आज्ञाओं का पालन करना होता है। लेकिन पार्टी के साधारण सदस्यों को इतना महत्त्व नहीं मिलता।

4. नई आवश्यकताएं (New Needs)–हर समूह में परिवर्तन होते रहते हैं। उनमें समय समय पर नई नई आवश्यकताएं उत्पन्न होती रहती है। समूह में उत्पन्न नई आवश्यकताओं की पूर्ति करना अति आवश्यक है। यदि इन नई आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जाती तो उस समूह के अस्तित्त्व को खतरा उत्पन्न हो सकता है। यदि कोई समूह अपने सदस्यों की नई मांगों की पूर्ति नहीं करता है तो वे सदस्य अन्य समूहों की सदस्यता ग्रहण कर लेते हैं वे अपना धर्म भी बदल सकते हैं, एक राजनैतिक पार्टी छोड़ दूसरी राजनैतिक पार्टी में शामिल हो सकता है। समूह अपने सदस्यों के लिये जितने अधिक कार्य करेगा, वह समूह उतना ही अधिक स्थायी और शक्तिशाली होगा।

5. समूह के लक्ष्य (Goals of a group)–समूह को प्रभावशाली बनाना आवश्यक होता है। अतः समूह को प्रभावशाली बनाने के लिये उस समूह के कुछ लक्ष्य निर्धारित होते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करना समूह का कार्य बन जाता है। समूह का हर सदस्य इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अपनी योग्यतानुसार और क्षमतानुसार प्रयत्नशील रहता है। समूह के सदस्यों की आवश्यकतानुसार ये समूह के ये लक्ष्य परिवर्तित होते रहते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अतः समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करना या पूरा करना ही समूह का मुख्य कार्य होता है।

6. सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाये रखना (To maintain cultural continuity)–हर समूह की अपनी कुछ मान्यताएं, विचार, आदर्श, प्रथाएं, आवश्यकताएं तथा मूल्य आदि होते हैं। इन पर संस्कृति का प्रभाव रहता है। समूह जितने समय तक इन मूल्यों, परम्पराओं, आदर्शों, मान्यताओं, विचारों आदि को बनाये रखता है, उतने ही समय तक वह सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाये रखता है।

7. सामाजीकरण (Socialization)–हर प्रकार के समूह का व्यक्ति के सामाजीकरण में योगदान होता है, जैसे परिवार, मित्र-मंडली, पड़ोस, खेल का समूह, आर्थिक समूह, राजनैतिक एवं धार्मिक समूह। इनका यह योगदान प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी। इन्हीं समूहों में रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है।

समूह के कार्य

1. → मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति
2. → सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति
3. → प्रबल सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि।
4. → नई आवश्यकताएं
5. → समूह के लक्ष्य
6. → सांस्कृति निरन्तरता को बनाये रखना।
7. → सामाजीकरण
8. → समूह की विचारधारा
9. → सुरक्षा की भावना।

चित्र : समूह के कार्य

8. समूह की विचारधारा (Group Ideology) – हर समूह की अपनी एक विचार धारा होती है। यह विचारधारा लक्ष्यों और सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है। समूह के कार्यों का समूह की यही विचारधारा निर्देशन करती है अथवा सहायता करती है। समूह की विचारधारा के कई कारक प्रभावित करते हैं जैसे– समूह के विश्वास (Group Beliefs) समूह के मानदंड (Group Norms) समूह के मूल्य (Group Values)।

समूह की विचारधारा के निर्माण के लिये आवश्यक है कि समूह के सदस्यों में सामूहिक विश्वास हो। सामूहिक विश्वास स्थायी समूहों में ही देखने को मिलता है। जब तक सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है तब तक उनका यह सामूहिक विश्वास बना रहता है। इसके लिये कुशल नेतृत्व की भी आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार हर समूह के कुछ न कुछ मानदंड (Group Norms) भी होते हैं जिनके अनुसार समूह के सदस्य व्यवहार करते हैं। इन मानदंडों का समूह की विचारधारा से सम्बन्ध होता है। औपचारिक समूहों (Informal) में लिखित मानदंड होते हैं, जबकि अनौपचारिक समूहों (Informal) में मौखिक मानदंडों का प्रयोग होता हैं। हर समूह की सफलता और उसके अस्तित्त्व के लिये ये मानदंड अति आवश्यक है। लेकिन परिस्थितियों के अनुसार ये मानदंड बदल भी जाया करते हैं।

ठीक इसी प्रकार हर समूह के अपने कुछ न कुछ मूल्य भी होते हैं। समूह के मानदंड इन मूल्यों पर आधारित होते हैं।

9. सुरक्षा की भावना (Sense of Security) –समूह में रहकर या उनमें शामिल होकर व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। यदि वह स्वयं को किसी समूह से सम्बद्ध नहीं करता तो उसमें असुरक्षा की भावना घर कर जाती है। इस दृष्टि से समूह में रहकर सभी सदस्य अधिक संगठित रह सकते हैं।

◆◆◆

परिवार (Family)

25. परिवार से आपका क्या अभिप्राय है? परिवार की मुख्य विशेषताओं, कार्यों तथा भारतीय परिवार को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए आप क्या सुझाव देंगे? स्पष्ट कीजिए।

अथवा

परिवार किसे कहते हैं? परिवार की मुख्य विशेषताओं, शिक्षा-संबंधी कार्यों तथा भारतीय परिवार को शिक्षा का प्रभावशाली साधन कैसे बनाया जा सकता है? व्याख्या कीजिये।

अथवा

परिवार से आप क्या समझते हैं? परिवार की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं, शैक्षिक कार्यों तथा भारतीय परिवार को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने संबंधी अपने सुझावों की व्याख्या कीजिये।

उत्तर–परिवार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Family)–परिवार किसी समाज अथवा राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई है। समाज शास्त्र की दृष्टि से परिवार सबसे पहला, छोटा और मूलभूत सामाजिक समूह है। इसमें प्रायः पति-पत्नी एवं उनकी संतान संगठित रूप से एक स्थान पर रहते हैं। एक परिवार में एक से अधिक दम्पत्ति एवं उनकी संतानें हो सकती हैं, परन्तु इनमें रक्त का सीधा संबंध होना आवश्यक होता है।

मैकाइवर तथा **पेज** ने परिवार को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है, **"परिवार एक ऐसा समूह है, जिसमें स्त्री और पुरुष का यौन संबंध होता है और जो बच्चों को पैदा करने और उनका लालन-पालन की व्यवस्था करता है।"**

डॉ. मजूमदार ने परिवार को और अधिक रूप से परिभाषित किया है, **"परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो एक घर में रहते हैं और जिनमें रक्त का संबंध होता है और जो स्थान, स्वार्थ और पारस्परिक कर्तव्य भावना के आधार पर समान होने की चेतना या भावना रखते हैं।"** भारतीय परिवार का विश्लेषण करने पर उनमें पाँच मूल तत्त्व देखने को मिलते हैं, वे हैं–

1. दाम्पत्य जीवन
2. रक्त का संबंध
3. संयुक्त उत्तरदायित्व
4. कार्य विभाजन
5. एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान।

परिवार के निर्माण का मूलभूत कारण दो भिन्न लिंगियों के दाम्पत्य जीवन में बंधने की इच्छा है। दाम्पत्य जीवन को सुखपूर्वक बिताने के लिए वे अपना एक घर बनाते हैं और उसमें एक साथ रहते हैं। दाम्पत्य जीवन द्वारा ही वे अपने वंश की वृद्धि करते हैं। परिवार में बच्चों के प्रवेश से उनके पालन-पोषण का दायित्व बढ़ता है। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह पति-पत्नी संयुक्त रूप से करते हैं। युवक होने पर बच्चे दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते हैं और या तो अपने माता-पिता के परिवार में रहकर संयुक्त परिवार का निर्माण करते हैं या अपना अलग परिवार बसाते हैं। दो या दो से अधिक सहोदर एवं उनकी सन्तानें अपना अलग परिवार बसाते हैं। दो या दो से अधिक सहोदर एवं उनकी सन्तानें संयुक्त-परिवार के सदस्य हो सकते हैं। इस प्रकार परिवार के पुरुष सदस्यों में रक्त का सम्बन्ध होना दूसरा मूल तत्त्व होता है।

भारतीय परिवारों की तीसरी विशेषता यह है कि उसके सदस्य परिवार की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करना अपना कर्तव्य समझते हैं। अपने संयुक्त उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए वे कार्य का विभाजन करते हैं। किसी भी स्थिति में उनमें प्रेम और सहयोग रहता है और जब उनमें ये भावनाएं समाप्त हो जाती हैं तो परिवार टूट जाता है।

इस समस्त विवेचना के आधार पर परिवार की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है–

"परिवार एक या एक से अधिक उन दम्पतियों एवं उनसे उत्पन्न होने वाले बच्चों का सामाजिक समूह होता है, जिसके पुरुषों में रक्त का सम्बन्ध होता है और जिसके सदस्य एक स्थान पर रहकर संयुक्त उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए अपना जीवन चलाते हैं।"

परिवार शिक्षा के अभिकरण के रूप में *(Family as An Agency of Education)*

प्रारम्भ में परिवारों का विधान सामाजिक जीवन को सरल बनाने के लिए हुआ था। आज भी उनका यही उद्देश्य होता है, परन्तु इन परिवारों में बच्चे जाने-अनजाने बहुत कुछ सीखते हैं। सच पूछिए तो बच्चे की शिक्षा का प्रारंभ इन्हीं परिवारों से होता है। मां की गोद बच्चे का सर्वप्रथम विद्यालय होता है और उसकी मां उसकी सर्वप्रथम शिक्षिका। परिवार में होने वाली इस शिक्षा के न तो उद्देश्य निश्चित होते हैं, न पाठ्यक्रम और न ही शिक्षण विधियां। इस प्रकार परिवार शिक्षा का अनौपचारिक अभिकरण है।

आदि युग में मनुष्य अपना जीवन पशु स्तर पर व्यतीत करता था। वह अपने रहने के लिए सुरक्षित स्थान का निर्माण करता जिसे आज घर कहते हैं, परन्तु उस घर के सदस्यों में आज जैसे भावात्मक सम्बन्ध नहीं होते थे। उस समय विवाह-प्रथा का चलन नहीं था। कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री और कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने के पशु-पक्षियों की भांति स्वच्छंद थे।

भावात्मक सम्बन्ध के अभाव में नवजात शिशु के पालन-पोषण में बड़ी बाधा पड़ती थी। मां की ममता से बच्चों का पालन-पोषण कर पूरा-पूरा भार मां पर ही पड़ता था तो कभी-कभी यह असंभव हो जाता था। इसके अतिरिक्त मनुष्य की अवस्था पर उसकी देखभाल की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इन आवश्यकताओं और इसी प्रकार की अनेक अन्य आवश्यकताओं मनुष्य को परिवार में बांध दिया। इस प्रकार परिवार सबसे पहला, छोटा तथा मूलभूत सामाजिक समूह है।

परिवार का विकास (Development of Family)—परिवारों के निर्माण से मनुष्य जाति का जीवन पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हो गया। जानवरों के विपरीत मनुष्य का बच्चा बड़ी असहाय अवस्था में पैदा होता है। उसे अपने पैरों पर खड़ा होने में वर्षों लग जाते हैं। शनैः शनैः मनुष्य ने इतना विकास किया कि वह वैदिक सभ्यता की चरम सीमा पर पहुँच गया। वैदिक कालीन भारत में परिवार ही शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। परिवार का नेता ही अपने बच्चों को वेदों का ज्ञान कराता था। उस समय बच्चों की साहित्यिक, धार्मिक तथा व्यावहारिक सभी प्रकार की शिक्षा परिवार में ही होती थी।

समाज विकास की ओर निरन्तर अग्रसर रहा। समाज के विकास के साथ-साथ जीवन की जटिलता बढ़ने लगी। अब इस जटिलता को परिवार में रहकर नहीं समझा जा सकता था। परिणामतः हमारे देश में गुरुकुलों का जन्म हुआ। गुरुओं के इन आश्रमों में परिवार का-सा ही पर्यावरण होता था। अन्तर केवल इतना होता था कि जिस ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा परिवार में असम्भव थी, उसकी शिक्षा का विधान इन गुरुकुलों में किया जाता था। उस समय गुरुओं का एक मात्र कार्य अध्ययन और अध्यापन होता था।

समाज के और अधिक विकसित होने पर बौद्धकाल में नालन्दा तथा तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। मध्यकाल में मन्दिरों तथा मस्जिदों में क्रमशः पाठशालाएँ और मठ बनने लगे, परन्तु बच्चे की शिक्षा में परिवारों का सहयोग बराबर रहा।

आधुनिक युग में परिवारों की भूमिका (Role of Family in the Modern Age)–आज हमारे देश में शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एवं उत्पादन कार्य में निपुण होकर लोकतंत्र का योग्य नागरिक बनाना है। देश का नैतिक पतन रोकने के लिए आज परिवार हमें इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करते हैं।

परिवार की मुख्य विशेषताएँ *(Chief Characteristics of Family)*

1. **सार्वभौमिकता (Universality)**–संसार का कोई भी समाज ऐसा नहीं है जहाँ परिवार किसी न किसी रूप में न पाया जाता हो। परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। यह विश्व के कोने-कोने में पाई जाती है।
2. **सीमित आकार (Limited size)**–परिवार का एक छोटा-सा सीमित आकार होता है। इसके सदस्यों की संख्या सीमित होती है।
3. **उत्तरदायित्व (Responsibility)**–अपने पारिवारिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति की पारिवारिक जिम्मेदारी होती है।
4. **सामाजिक संगठन का केन्द्र (Centre of Social Organisation)**–परिवार सामाजिक संगठन का केन्द्र होता है। विभिन्न परिवारों से मिलकर समाज की रचना होती है। परिवार समाज की ही छोटी इकाई होती है।
5. **सामाजिक गुणों का पालन (Performance of Social Virtues)**–बच्चे में सामाजिक गुण परिवार में रहकर ही विकसित होते हैं। परिवार सामाजिक गुणों का प्रेरक है। परिवार का बच्चे के व्यक्तित्त्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है।
6. **जन्मजात प्रवृत्तियाँ पारिवारिक आधार के रूप में (Innate Tendencies as basis of Family)**–लैंगिक संबंध तथा माता-पिता का अपनी संतान से प्रेम आदि जन्मजात प्रवृत्तियाँ परिवार के निर्माण का आधार होती है।
7. **संस्था के रूप में स्थायी (Permanent as Institution)**–परिवार संस्था के रूप में स्थायी होता है।

परिवार के शिक्षा संबंधी कार्य *(Education Functions of Family)*

घर या परिवार के कुछ कार्य निम्नलिखित हैं–

1. बच्चों का शारीरिक-विकास (Physical Development of Children)–बच्चों का पालन-पोषण प्रायः परिवारों में ही होता है। भारत में तो बच्चों के पोषण के एकमात्र स्थान परिवार ही होते हैं। पोषण संस्थान के रूप में परिवार बच्चों के

खाने-पीने की व्यवस्था करते हैं, उनकी देखभाल करते हैं और रोगग्रस्त होने पर उनका इलाज कराते हैं। शिक्षा के अभिकरण के रूप में ही बच्चों को ऐसा नियमित जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण देते हैं जो स्वास्थ्य लाभ एवं उनकी रक्षा के लिए आवश्यक होता है। बच्चे अपने परिवार के सदस्यों का अनुकरण कर समय से उठना, खड़े होना तथा चलना और समय पर निद्रा लेना आदि सीखते हैं। इससे उनका शारीरिक विकास होता है।

विद्यालय के सहयोगी रूप में परिवार बच्चों को विद्यालयों में आयोजित स्वास्थ्यप्रद क्रियाओं में भाग लेने की प्रेरणा देते हैं। परिवारों को यह देखना चाहिए कि उनके बच्चे विद्यालयों में उपलब्ध स्वास्थ्य लाभ संबंधी सुविधाओं का लाभ उठाते हैं या नहीं। जब बच्चे रोगग्रस्त हो जाते हैं तो विद्यालय उनके अभिभावकों को सूचित करते हैं। तब परिवार के सदस्य ही बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं। विद्यालयों के प्रांगण में सीखे स्वास्थ्य संबंधी नियमों का पालन रक्षा बच्चे परिवार में ही करते हैं। विद्यालयों के प्रांगण में सीखे स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन यदि परिवार में न कराया जाए तो वे सब नियम व्यर्थ ही होंगे। विद्यालय में तो बच्चे कुछ समय के लिए ही होते हैं। जो परिवार बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा संबंधी उचित आदतों के निर्माण में विद्यार्थियों का सहयोग नहीं करते वे अपने उत्तरदायित्व से विमुख ही कहे जाएँगे।

2. मानसिक-विकास का अभिकरण (Agency of Mental Development)–प्रत्येक बच्चा कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। इन्हीं शक्तियों के आधार पर ही उसका विकास होता है। बच्चों के मानसिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें विभिन्न परिस्थितियों में रखकर इन्द्रियानुभव कराया जाए। इस अनुभव के आधार पर उनमें जो बातें जानने की उत्कण्ठा हो उसका उचित उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा को शान्त किया जाए ओर फिर उन्हें अभिव्यक्ति के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जाएँ। मानसिक विकास की ओर यह सबसे पहला पग होता है।

परिवार में बच्चों को विभिन्न परिस्थितियों में अवलोकन करने, प्रत्येक नई बात को जानने, आपसी जिज्ञासा शान्त करने तथा स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए माता-पिता का प्यार भरा पर्यावरण मिलता है। अभिव्यक्ति के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ती है। इस भाषा को बच्चे परिवार में ही सीखते हैं। बच्चे जन्म के कुछ दिन बाद ही अपने परिवार के सदस्यों का अनुकरण कर भाषा सीखना आरम्भ कर देते हैं। यही कारण है कि बच्चे जिस भाषा-भाषी परिवार में जन्म लेते हैं और पलते हैं, उसी की भाषा सीख जाते हैं। बच्चे के बौद्धिक विकास में पहेलियों और कहानियों का भी बड़ा हाथ होता है।

हमारे भारतीय परिवारों में बूढ़ी दादी, नानी और अम्मा आदि का भी बड़ा महत्त्व होता है। घर के वयस्क लोगे बच्चों को स्तरानुकूल कहानियाँ सुनाकर उनकी कल्पना शक्ति विकसित करते हैं। पहेलियों द्वारा बच्चों का मानसिक व्यायाम कराया जाता है। यह बात कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि शिक्षित परिवारों का शैक्षिक पर्यावरण बच्चों को उच्च मानसिक स्तर की ओर अग्रसर करने में बड़ा सहायक होता है, परन्तु अशिक्षित परिवारों में इस सबकी आशा करना व्यर्थ है। उनमें रहकर बच्चे न शुद्ध भाषा सीखते हैं और न तर्कपूर्ण विचार करना।

विद्यालय के सहयोगी के रूप में भी परिवार बच्चों के मानसिक विकास में सहायक होते हैं। विद्यालयों में बच्चों के मानसिक विकास के लिए अनेक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। इस ज्ञान की सामाजिक उपयोगिता सामाजिक परिस्थितियों में अधिक अच्छे ढंग से समझी जा सकती है, परिवार इस ओर सहायक होते हैं। इतना ही नहीं बल्कि विद्यालयों में घर के लिए दिया हुआ कार्य बच्चे तब तक अधिक रुचि और लगन के साथ करते हैं जब तक उसके परिवार के सदस्य उन्हें वैसा करने की प्रेरणा देते हैं। विद्यालय का शिक्षक विशेषकर आज के युग में बच्चों के पीछे-पीछे नहीं फिर सकता। विद्यालय से जाने के बाद बच्चे अपना कार्य पूरा करते हैं या नहीं यह बहुत कुछ परिवार के सदस्यों पर निर्भर करता है।

3. नैतिक-विकास के अभिकरण के रूप में (As an Agency of Moral Development) –बच्चे कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर पैदा होते हैं। प्रारम्भ में उनका व्यवहार मूल प्रवृत्यात्मक होता है। परिवार के सदस्यों का अनुकरण करके वे अपने व्यवहार में परिवर्तन तथा परिमार्जन करते हैं। जिस परिवार का जैसा चारित्रिक एवं नैतिक स्तर होता है बच्चों पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। जिन परिवारों के सदस्यों के बीच प्रेम, सहानुभूति और विश्वास आदि की भावना होती है उन परिवारों के बच्चे प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का चारित्रिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

आदर्श पारिवारिक पर्यावरण में बच्चों में उत्तम चरित्र के लिए आवश्यक अच्छी आदतें राष्ट्र के प्रति प्रेम के स्थाई भाव बनते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चे आज्ञा पालन, कर्तव्यपालन, सत्यता, ईमानदारी, दया, परोपकार और बलिदान जैसे उत्तम गुणों का ग्रहण करते हैं। जिन परिवारों का पर्यावरण धार्मिक होता है उन परिवारों के बच्चों में जो चारित्रिक एवं नैतिकता की भावना का विकास होता है वह बहुत सुदृढ़ होता है। परिवारों का उच्च धार्मिक पर्यावरण बच्चों को सभ्य एवं शिष्ट बनाता है। यदि परिवारों का पर्यावरण दूषित होता है तो फिर उन परिवारों के बच्चे भी दूषित बनते हैं।

विद्यालय के सहयोगी के रूप में भी परिवार बच्चों का चारित्रिक तथा नैतिक विकास करने में सहयोग करते हैं। कोई भी समाज विद्यालयों का विधान अपने आदर्शों को प्राप्त करने के लिए करता है। जिन परिवारों को इस सत्य का ज्ञान होता है वे अपने बच्चों को विद्यालयों के नियम, समय पर जाना, अध्यापकों की आज्ञा का पालन करना, सबसे प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना, शान्ति के साथ चलना-फिरना, समय पर खेलना-कूदना, समय-समय पर आयोजित सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लेना, अध्ययन कार्य में रुचि लेना, विद्यालय में प्राप्त चारित्रिक एवं नैतिक शिक्षाओं को वास्तविक जीवन में अपनाने की ओर अग्रसर करना आदि बिना परिवारों के सहयोग के सम्भव नहीं होगा तो विरोधी मान्यताओं के बीच हमारे बच्चे पिस जाएँगे।

4. सामाजिक-विकास (Social Development)–एक परिवार सर्वप्रथम छोटा एवं मूलभूत सामाजिक समूह है। इस सामाजिक समूह के सामाजिक पर्यावरण में बच्चे प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं तथा इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहीं पर वे एक-दूसरे की सहायता करना सीखते हैं। उचित तथा अनुचित ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता का विकास भी परिवार से ही प्रारम्भ हो जाता है। परिवार के बच्चे एक-दूसरे के साथ समायोजन करना सीखते हैं। बिना सब बातों के एक व्यक्ति सामाजिक नहीं हो सकता।

परिवारों में रहते हुए भी बच्चे अन्य सामाजिक समूहों से दूर नहीं रहते। दो वर्ष की आयु होने पर वे घर से बाहर निकलकर खेलने-कूदने लगते हैं। जिन घरों में जितनी अधिक सामाजिक भावना होती है उन घरों के बच्चे उतनी ही अधिक सामाजिकता की ओर बढ़ते हैं। अपनी-अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान बच्चे परिवारों में ही प्राप्त करते हैं। पारिवारिक जीवन के धार्मिक संस्कार भी बच्चों में सामाजिक गुणों का विकास करते हैं।

वर्तमान युग में विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। आज हम अपने राष्ट्र के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बच्चों को मिल-जुलकर कार्य करने के लिए तैयार करते हैं। बच्चों से हम यह आशा करते हैं कि वे श्रम का महत्त्व समझें, सभी मनुष्यों को मनुष्य समझें। विद्यालय अपने इन आदर्शों की प्राप्ति तब ही कर सकता है जब विद्यालय में आने वाले बच्चों के परिवार भी इन आदर्शों में विश्वास रखते हों। तभी तो वे अपने बच्चों को उत्साहित करेंगे और समाज सेवा के कार्यों में हाथ बँटाने के लिए गन्दी बस्तियों एवं गाँवों में अपने बच्चों को जाने की आज्ञा देंगे।

5. अच्छी आदतों की शिक्षा (Education of good Habits)–आदतें सीखी जाती हैं। अच्छी या बुरी जो भी आदतें बालक सीखता है, उसे वह परिवार में ही सीखता है। आदतों के निर्माण की जिम्मेदारी स्कूल की नहीं, बल्कि घर परिवार की होती है। माँ बच्चों का हमेशा अच्छी आदतें सिखाती रहती है। पिता तथा परिवार के अन्य लोग भी बच्चे को ये आदतें सिखाते रहते हैं। परिवार वाले तो बच्चे को अच्छी आदतें ही सिखाना चाहते हैं, लेकिन बुरी आदतें भी परिवार की ही देन होती हैं। यह भी सम्भव है कि बालक बुरे बच्चों की संगत में बुरी आदतें सीख रहे हों। लेकिन बच्चे की बुरी संगत में किसने रहने दिया? यदि परिवार सभ्य होता या बच्चों की चिन्ता करता, तो वह बुरी संगत में पड़कर गन्दी आदतें क्यों सीखता? यही आदतें जिन्हें कि बालक परिवार में सीखता है वे उसके चरित्र का अंग बन जाती हैं। यदि परिवार से बच्चों को अच्छी आदतें मिलीं तब तो वह आगे चलकर अच्छे कार्य करता है, उसका जीवन अच्छा बीतता है, अन्यथा ये गन्दी आदतें बच्चों का जीवन ले डूबती हैं। इसलिए परिवार के हर सदस्य की यह जिम्मेदारी है कि वे बच्चों में अच्छी आदतें डालने का प्रयास करें।

6. सांस्कृतिक-विकास (Cultural Development)–बच्चा जिस परिवार में पैदा होता है, उसकी भाषा सीखता है तथा उसी के रहन-सहन, खान-पान तथा व्यवहार के तरीके सीखता है। रीति-रिवाज, मूल्य और मान्यताओं की शिक्षा भी बच्चा परिवार में ही पाता है। यहीं उसकी पसन्द तथा रुचियों का विकास होता है। बच्चे जैसे पर्यावरण में रहते हैं, उनकी पसन्द तथा रुचियाँ भी उसी प्रकार की हो जाती हैं।

सफाई पसन्द और कला प्रेमी परिवारों के बच्चों में सौंदर्य भावना का विकास स्वभावतः होता है। भाषा, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, मूल्य तथा मान्यताओं के प्रति बचपन में पड़े संस्कार अमिट होते हैं। ये संस्कार उसे अपनी संस्कृति से अलग नहीं होने देते और इस प्रकार संस्कृति के संरक्षण में परिवारों का योगदान सबसे अधिक होता है।

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ के विद्यालयों में किसी एक संस्कृति की शिक्षा देना सम्भव नहीं है। इनमें तो विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण दिखाई देता है। जिसका मूलाधार तो हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति ही है पर उसका रूप कुछ नया है। बच्चों में विभिन्न संस्कृतियों के प्रति उदारता का भाव उत्पन्न करने के लिए परिवारों के सहयोग के बिना विद्यालय इस ओर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

7. व्यावसायिक-विकास (Vocational Development)–जब तक हमारे समाज का रूप सरल रहा तब तक इस प्रकार की शिक्षा परिवारों में ही दी जाती थी, परन्तु अब ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इतना विकास हुआ है कि उन सबकी शिक्षा परिवारों द्वारा सम्भव नहीं है। आज के मानव ने इतने अधिक भौतिक साधन एवं उपसाधनों का निर्माण किया है कि उन सबके निर्माण की कला घर की चहारदीवारी के अन्दर नहीं सीखी जा सकती। उन सबके लिए विद्यालयों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह सत्य है कि आज भी कृषक का बच्चा खेती करने की शिक्षा परिवार में ही पाता है। इसी प्रकार बढ़ईगिरी, लुहारगिरी, सूत कातना, कपड़े बुनना, चमड़े का सामान बनाना आदि अनेक व्यावसायिक तथा औद्योगिक कार्यों की शिक्षा आज भी परिवारों में ही हो सकती है।

विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए विद्यालयों के महत्त्व को स्वीकार किया जाता है। बड़े-बड़े उद्योगों की शिक्षा के लिए विद्यालयों पर ही निर्भर रहना पड़ता है, परन्तु उसमें भी परिवारों का सहयोग रहता है। परिवार बच्चों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें यथाचित शिक्षा ग्रहण करने के लिए अवसर प्रदान करते हैं। उनमें विशेष प्रकार की क्षमता प्राप्त करने के लिए लगन पैदा करते हैं। बच्चों में रुचि और रुझान का विकास करने तथा उन्हें यथा क्षेत्रों में क्रियाशील करने में परिवारों का जो महत्त्व है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

8. आध्यात्मिक-विकास (Spiritual Development)–भारत एक धर्म प्रधान देश है। हमारे यहाँ लगभग सभी लोग किसी न किसी धर्म को मानते हैं। जब बच्चे अपने परिवार में अपने माता-पिता तथा भाई-बहन आदि को विशेष प्रकार की धार्मिक क्रियाओं को करते देखते हैं तो उन क्रियाओं के प्रति वे स्वभावतः आकर्षित होते हैं। धीरे-धीरे उनमें इन क्रियाओं के प्रति स्थायी भाव बन जाते हैं। बड़े होने पर वे अपने धर्म के मूल्य और मान्यताओं से परिचित होते हैं। धर्म के प्रति उनमें बचपन से पड़े ये संस्कार अमिट होते हैं। धर्म कोई भी हो, वह हमें आत्मा और परमात्मा का ज्ञान कराता है और हमारे सामाजिक व्यवहार की दिशा निश्चित करता है। इसकी सहायता से हमारा आध्यात्मिक विकास होता है। जिन परिवारों के सदस्य धार्मिक भावना से पूर्ण नहीं होते और जो आत्मा और परमात्मा में विश्वास नहीं करते, उनके बीच रहकर बच्चों का आध्यात्मिक विकास नहीं हो पाता, परन्तु ऐसे परिवार हमारे देश में बहुत कम हैं।

भारत में धर्म भी अनेक हैं। विद्यालयों में सभी धर्मों की शिक्षा सम्भव नहीं है। यदि ऐसा किया तो विभिन्न समुदायों में लड़ाई-झगड़े बढ़ सकते हैं। यही कारण है कि हमारे देश के संविधान में विद्यालयों में किसी धर्म की शिक्षा न देने की बात कही गई है, परन्तु बिना धर्म के हमारा नैतिक उत्थान नहीं हो पा रहा है। इसीलिए विद्यालयों में सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों की शिक्षा देने की बात सोची जा रही है। विद्यालय इस कार्य में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक परिवार उनका सहयोग नहीं करते।

9. भावात्मक विकास (Emotional Development)–परिवार बच्चे के भावात्मक विकास का आधार है। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों को पूर्ण स्नेह प्रदान करें ताकि उनमें भावात्मक संरक्षण की भावना का विकास हो। माता-पिता को सहानुभूति पूर्ण होना चाहिए और उन्हें बच्चों को विभिन्न समस्याओं का उचित समाधान प्रदान करना चाहिए। बच्चों को यह अनुभव नहीं होने देना चाहिए कि उनकी अवहेलना होती है और वे अवांछित बच्चे हैं। माता-पिता को परिवार में मैत्रीपूर्ण ढंग से रहना चाहिए। उन्हें अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए, क्योंकि भावनाएँ सदा ग्रहण की जाती हैं, सिखाई नहीं जाती।

10. नागरिक-विकास (Civic Development)–बच्चा उच्च नागरिकता का प्रथम पाठ माता के चुम्बनों और पिता के आलिंगनों से सीखता है। बच्चा परिवार से कई नागरिक गुणों को सीखता है। यह परिवार ही है, जो बच्चे को अपने कर्तव्य एवं दायित्व को पहचानने और निभाने में सहायता प्रदान करता है। यह बच्चे में अनुशासन सहयोग तथा सहनशीलता के गुणों को विकसित करता है।

11. भाषा की शिक्षा परिवार में ही मिलती है (Learning of Language is received from Family)–विद्यालयों में परिष्कृत भाषा की शिक्षा दी जाती है, लेकिन वह भाषा जिसके माध्यम से बालक अध्यापक की बातें समझता है, अपनी बातें दूसरों के सामने रखता है तथा दूसरों की बातें समझता है वह किसने सिखाई? बालक इस भाषा को विद्यालय में नहीं, बल्कि परिवार में सीखता है। विद्यालय तो कोई अन्य भाषा सिखाने का प्रयास दसियों साल तक करता है, लेकिन बच्चे उसमें पारंगत नहीं हो पाते, दूसरी ओर बच्चा घर-परिवार में रहकर तीन चार वर्षों में ही मातृभाषा पूरी तरह सीख लेता है। इस भाषा को बोलने और समझने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। परिवार का कोई सदस्य मातृभाषा जान बूझकर बच्चे को सिखाता भी नहीं, बच्चा अपने आप इस वातावरण में रहकर भाषा को सीख लेता है। इस तरह भाषा की शिक्षा के लिए परिवार बच्चे को इतना अच्छा वातावरण प्रदान करता है कि उसे विद्यालय से अधिक भाषा सीखने में मदद मिलती है।

बच्चे परिवार में रहकर जो भाषा सीखते हैं, वही विद्यालय शिक्षा की नींव होती है। अतः बच्चे में भाषा की नींव तैयार करने का काम विद्यालय नहीं, बल्कि परिवार करता है। यदि परिवार में लोग अच्छी और शुद्ध भाषा बोलते हैं, तो बच्चा भी अच्छा और शुद्ध भाषा सीख जाता है। तात्पर्य यह है कि परिवार में जो भाषा बोली जाती है, उसे बालक पाँच-छः वर्षों में खूब अच्छी तरह सीख लेता है।

परिवार वालों का कर्तव्य है कि वे बालक के सामने शुद्ध भाषा बोलें, उनके उच्चारण भी शुद्ध हों, क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि जो शब्द भण्डार बालक परिवार में इकट्ठा करता है, जो उच्चारण बालक परिवार में सीखता है, उसमें विद्यालयीय शिक्षा द्वारा प्रयास करने के बाद भी सुधार नहीं हो पाता।

12. औपचारिक-शिक्षा प्राप्त करने योग्य बनाना (Making Competent to recieve Formal Education)– पारिवारिक शिक्षा में बालक के आने वाले काल में उसके स्कूल से मिलने वाली शिक्षा की तैयार की जाती है। बालक अपने परिवार में जो भाषा सीखता है, उसका जो मानसिक, सामाजिक, भाषात्मक तथा अन्यपक्षीय विकास होते हैं, वे बालक की स्कूली शिक्षा में काम आने वाले होते हैं। यदि ये सभी शिक्षाएँ बच्चे को न मिलें तो वह विद्यालय की शिक्षा पाने योग्य नहीं हो सकता। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि परिवार अपनी शिक्षाओं के द्वारा बालक को इस योग्य बनाता है कि वह विद्यालय से मिलने वाली शिक्षा को प्राप्त कर सके।

हमारे परिवार बालकों के शिक्षा संबंधी सभी कर्तव्यों को पूरा करते हैं। जहाँ तक अन्य देशों का प्रश्न है वे अपने पारिवारिक शिक्षा के दायित्व को पूर्ण नहीं कर पाते। अपने कर्तव्यों का भार वे नर्सरी या पूर्ण प्राथमिक पाठशालाओं को दे दिया करते हैं। इसका कारण यह है कि वहाँ परिवार छोटे होते हैं। घर के सभी लोग काम पर चले जाते हैं। ऐसी हालात में बच्चों को शिक्षा कौन दे? इसी आवश्यकता को पूरा करने लिए रोम में माण्टेसरी ने बालघरों की स्थापना की, अमेरिका ओर रूस में छोटे बच्चों के अनेक विद्यालय खोले, जिससे काम पर गये हुए माता-पिताओं की संतानों की देख-रेख विद्यालय कर सकें। हमारे देश की ऐसी हालत नहीं है। वहाँ शहरों के कुछ आधुनिक सभ्यता के रंग में रंगे परिवारों के सामने ही ऐसी समस्या है, जहाँ सभी लोग नौकरी करते हैं। ऐसी हालत में उनके बच्चों की शिक्षा के लिए, देख-रेख के लिए विद्यालयों की जरूरत होती है। ऐसे बच्चों के लिए 3 से 6 वर्ष के बच्चों की शिक्षा के लिए नर्सरी स्कूल पर्याप्त मात्रा में हैं। शेष देहात के परिवार वाले अपनी ही संस्कृति की राह पर चल रहे हैं। अधिक आर्थिक दृष्टिकोण का विकास उनमें नहीं हुआ है। अतएव परिवार के अन्य सदस्य तथा माता-पिता बच्चों को परिवार में मिलने वाली शिक्षा संबंधी दायित्व को पूरा कर लेते हैं। लेकिन पारिवारिक शिक्षा का वातावरण ठीक नहीं है। इन्हें बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए, जिससे अपने शिक्षा संबंधी दायित्व को ये और भले ढंग से पूरा कर सकें।

भारतीय परिवार को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए सुझाव
(Measures to make Indian Family an effective Agency of Education)

भारतीय परिवार को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए **निम्नलिखित सुझाव** दिए जा सकते हैं–

1. शारीरिक-विकास की व्यवस्था (Provision for Physical Development)–परिवार को चाहिए कि वह बच्चे के शारीरिक विकास की समुचित व्यवस्था करे, जिसके लिए **निम्नलिखित बातों** का ध्यान रखना चाहिए–

(क) हवादार घर : जहाँ हवा, धूप तथा प्रकाश का पर्याप्त प्रावधान हो।

(ख) संतुलित एवं पौष्टिक भोजन समय पर।

(ग) स्वच्छ तथा आरामदायक वस्त्र।

(घ) व्यायाम, खेलकूद तथा आराम की व्यवस्था।

(ङ) व्यक्तिगत स्वतंत्रता–माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों में प्रातः दाँत साफ करने, स्नान करने, नाखून साफ करने तथा शरीर को स्वच्छ रखने की आदतें डालें।

2. बौद्धिक विकास की व्यवस्था (Provision for Intellectual Development)– बौद्धिक विकास से संबंधित खिलौने, पहेली बॉक्स, चित्र-पहेलियाँ, शिक्षाप्रद कहानियों की पुस्तकों आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों को रात को सोते समय कहानियाँ तथा पहेलियाँ आदि सुनाएँ।

3. चारित्रिक विकास (Character Formation)–परिवार को बच्चे में सहानुभूति, सहनशीलता, सदाचार, सच्चाई, ईमानदारी, परिश्रम, परोपकार, कर्तव्य-परायणता और आत्मत्याग आदि गुणों का विकास करना चाहिए। परिवार को बच्चों के सामने अच्छे आदर्श पस्तुत करने चाहिए।

4. भावात्मक विकास (Emotional Development)–माता-पिता को बच्चे की विभिन्न समस्याओं का उचित समाधान प्रदान करना चाहिए। उन्हें परिवार में मैत्रीपूर्ण ढंग से रहना चाहिए। उन्हें बच्चों को उचित स्नेह प्रदान करना चाहिए, ताकि उनमें भावात्मक संरक्षण की भावना का विकास हो।

5. सामाजिक विकास (Social Development)–परिवार को प्रारम्भ से ही बच्चों की रीति-रिवाजों, उठने-बैठने और अभिवादन करने के ढंगों को सिखाना चाहिए, जिससे नये लोगों के मिलने पर बालक झिझक महसूस न करे।

6. सांस्कृतिक विकास (Cultural Development)–परिवार को बालक के मन में अच्छी सभ्यता और अच्छी संस्कृति के बीज बोने चाहिए। बच्चे को सुसंस्कृत बनाने के लिए उसके सामने अच्छे लोगों के उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए।

7. धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकास (Religious and Spiritual Development)– परिवार के वरिष्ठ सदस्यों को चाहिए कि बच्चों को धार्मिक नेताओं की जीवनियों तथा उनकी मान्यताओं से परिचित कराएँ। बच्चों को दैनिक प्रार्थनाओं, धार्मिक स्थानों में पूजा तथा ईश्वर भक्ति के प्रति प्रोत्साहित करना चाहिए। बच्चों में सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् की भावना को विकसित करना चाहिए।

8. नागरिकता का विकास (Development of Citizenship)–परिवार के सदस्यों को चाहिए कि वे आरम्भ से ही बच्चों को नागरिकों के कर्तव्य और अधिकार बतलाएँ जिससे उनका व्यावहारिक ज्ञान बढ़े। इससे उनमें बड़े होने पर नागरिकता की भावना का उचित विकास होगा।

9. सौंदर्यात्मक विकास (Aesthetic Development)–इसके लिए घर के वातावरण को सुन्दरतम् बनाने की आवश्यकता है।

10. माता-पिता को शिक्षित करना (To Educate Parents)–परिवार को शिक्षा का प्रभावशाली अभिकरण बनाने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय परिवारों से निरक्षरता को दूर किया जाए। अभिभावकों को एक निश्चित स्तर पर शिक्षा दी जाए ताकि वे अपना काम भली-भांति कर सकें।

सारांश (Conclusion)–शिक्षा के क्षेत्र में परिवारों का हाथ आदि काल से ही रहा है और आज भी है। आदिकाल में तो परिवार ही शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। आज भी बच्चे के शिक्षा की नींव परिवार में ही रखी जाती है। उसकी पूरी शिक्षा में परिवार का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हाथ रहता है। यही कारण है कि शिक्षा के क्षेत्र में परिवारों का महत्त्व देश-विदेश के सभी शिक्षा-शास्त्रियों ने स्वीकार किया है। जर्मन दार्शनिक तथा शिक्षा-शास्त्री **पैस्टालोजी** ने घर को प्रेम एवं स्नेह का केन्द्र-बिन्दु कहा है तथा उसे बच्चे की सर्वप्रथम एवं सर्वोत्तम शिक्षण-संस्था के रूप में स्वीकार किया है।

इसी प्रकार **फ्रोबल** ने माताओं को आदर्श शिक्षाएँ और परिवारों में दी जाने वाली अनौपचारिक शिक्षा को स्वाभाविक एवं सर्वाधिक प्रभावशाली शिक्षा कहा है। **मांटेसरी** ने भी छोटे बच्चों के लिए स्थापित विद्यालयों में घर का स्वच्छन्द प्रेम एवं स्नेहयुक्त पर्यावरण बनाने का समर्थन किया है। **महात्मा गांधी** ने भी अपनी पाठशालाओं के लिए परिवार जैसे प्रेम और सहानुभूति को आधारभूत तत्त्व स्वीकार किया है।

◆◆◆

26. परिवार का क्या अर्थ है? परिवार के मुख्य प्रकारों तथा पारिवारिक संगठन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

परिवार किसे कहते हैं? परिवार के मुख्य कार्यों तथा पारिवारिक संगठन की विशेषता की विवेचना कीजिये।

अथवा

परिवार से आप क्या समझते हैं, यह कितने प्रकार के होते हैं? पारिवारिक संगठन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

उत्तर–परिवार का अर्थ (Meaning of Family)–प्राथमिक समूहों में परिवार (Family) का सर्वप्रथम स्थान है। परिवार ही सामाजिक जीवन की इकाई है। संसार के सभी समाजों में इसकी सत्ता है। ऐसा कोई भी समाज देखने को नहीं मिलता जिसमें कि परिवार न हो। आदमी का जीवन परिवार से शुरू होता है। छोटा शिशु परिवार या घर में ही जन्म लेता है। शनैः शनैः उसका विकास भी यहीं होता है। परिवार बच्चे के पालन-पोषण की सभी परिस्थितियों को प्रदान कर उसके विकास की सभी शर्तों को पूरा करता है। इन्हीं परिस्थितियों में बालक अपनी जन्मजात शक्तियों को विकसित करता है व आगे चलकर विशिष्ट समाज का एक अंग बनता है।

आरम्भिक अवस्था या उम्र के प्रभाव काल में शिशु दूसरे के ऊपर निर्भर था, लेकिन पूर्ण मनुष्य बन जाने पर दूसरे उसके आधारित या निर्भर हो जाते हैं। वह अब पुरानी पीढ़ी का कहा जाने लगता है, नयी पीढ़ी के पालन-पोषण का भार उसके आ जाता है। इस तरह परिवार की सत्ता बनी रहती है। इस तरह परिवार एक ऐसा समूह है, जिसके साथ मनुष्य का संबंध के उषाकाल से लेकर अन्तिम अथवा अवसान काल तक बना रहता है।

परिवार को अंग्रेजी भाषा में फेमिली (Family) कहते हैं। फेमिली शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'फेमुलस' (Famulus) से हुई है, जिसका मतलब है 'नौकर'। जिस अर्थ में परिवार की उन्नति हुई है अब उस अर्थ में परिवार का बोध नहीं होता। आधुनिक अर्थ में तो परिवार एक ऐसी इकाई है या सामाजिक समूह है, जिसमें पति-पत्नी तथा उसके अविवाहित बच्चे तथा इनके साथ-साथ अन्य संबंधी सम्मिलित होते हैं जो सभी उत्तरदायित्व और स्नेह की भावना से बँधे रहते हैं।

परिवार के अर्थ को भली प्रकार समझने के लिए आवश्यक है कि अन्य विद्वानों ने परिवार का क्या अर्थ लगाया है, इसे भी समझ लिया जाये। अतएव अब हम यहाँ परिवार के विषय में अन्य विद्वानों द्वारा दी गई परिस्थितियों का उल्लेख करेंगे।

परिवार की परिभाषायें–परिवार के लक्षणों को भली प्रकार समझने के लिए इसकी परिभाषाओं से परिचिति हो जाना आवश्यक है। नीचे समाज वैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिवार की परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है–

1. **बर्गसन तथा लॉक** के अनुसार, **"परिवार उन व्यक्तियों के समूह को कहते हैं, जो विवाह, रक्त संबंध या गोद लेने द्वारा परस्पर सम्बद्ध हो और जिन्होंने परस्पर मिलकर एक गृहस्थी का निर्माण किया हो और साथ ही जो पति-पत्नी के रूप में, माता-पिता के रूप में, पुत्र और पुत्री के रूप में, माँ-बहन के रूप में अपने-अपने सामाजिक कार्यों के क्षेत्र में एक दूसरे पर प्रभाव डालें व एक दूसरे के साथ अन्तः सम्पर्क रखें ओर इस प्रकार का एक सम्मान्य संस्कृति का सृजन कर उसे कायम रखें–उसे परिवार कहते हैं।"**
2. **मैकाइवर** और **पेज** के अनुसार, **"परिवार एक ऐसा समूह है, जो पर्याप्त रूप से निश्चित लैंगिक संबंध पर आधारित हो और जो इतना स्थायी होता है कि उसके द्वारा बच्चों के जन्म व पालन-पोषण की व्यवस्था हो जाती है।"**

मानवशास्त्र में परिवार की व्याख्या करते समय केवल इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया है कि विवाहित दम्पति ही परिवार के लिए पर्याप्त है। यह भी आवश्यक है कि दो विपरीत योनि के लोगों में सामाजिक नियमों के अनुसार यौन संबंध भी हो।

एक भारतीय विद्वान् के अनुसार–परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती है। उनमें कम से कम दो विपरीत योनि के व्यक्तियों के योनि संबंधों को सामाजिक स्वीकृति रहती है और उनके संसर्ग से उत्पन्न संतान मिलकर परिवार का निर्माण करती है। इस प्रकार प्राथमिक या मूल परिवार के लिए माता-पिता और उनका संतति का होना आवश्यक है। परिवार को इस अर्थ में समझने के बाद एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति दो मूल परिवारों का वर्तमान या भावी सदस्य होता है, एक तो वह जिसमें कि वह जन्मा है, दूसरा वह जहाँ वह जनक या जननी का कार्य करता है या भविष्य में करने वाला है।

परिवार का वर्गीकरण या परिवार के प्रकार *(Kinds of Family or Classification of Family)*

समाज में अनेक प्रकार के परिवारों का विकास हुआ है। पश्चिमी देशों में परिवार पति-पत्नी, अविवाहित बच्चों तक ही सीमित है। बच्चे बड़े 16 वर्ष के हो जाते हैं तो वे तुरन्त परिवार से अलग हो जाते हैं। इस तरह के परिवार में एक ही पीढ़ी के लोग रहते हैं।

पति-पत्नी के द्वारा संगठित किये गये परिवार को समाजशास्त्र में स्वाभाविक परिवार, केन्द्रीय परिवार, व्यक्तिगत परिवार तथा प्रजनन परिवार कहते हैं। बहुपत्नी, बहुपति के आधार पर विकसित हुये परिवार को विस्तृत परिवार कहा जाता है। भारत के संयुक्त परिवार भी विकसित परिवार की कोटि में आते हैं।

परिवार का वर्गीकरण दूसरे आधार पर भी किया गया है। परम्पा में यदि पिता की प्रधानता है तो इस प्रकार के परिवार को पितृ सत्तात्मक परिवार कहते हैं तथा जिस परिवार में माता की प्रधानता होती है, उसको मातृ-सत्तात्मक परिवार कहा जाता है। इस प्रकार समाजशास्त्र-वेत्ताओं ने परिवार की उत्पत्ति के संबंध में अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इस आधार पर परिवार के **निम्नलिखित** प्रकार हुए–

अ और ब दो प्रकार के परिवार हैं–

(अ) परिवार

(1) मातृ-सत्तात्मक परिवार,
(2) समान-रुधिर परिवार,
(3) मातृ-स्थायी परिवार,
(4) मातृ-वंशी परिवार।

(ब) परिवार

(1) पितृ-सत्तात्मक परिवार, (2) सहयोगी परिवार,
(3) पितृ-स्थायी परिवार, (4) पितृ-वंशी परिवार।

पारिवारिक संगठन की विशेषताएँ–समाज में अनेक प्रकार के परिवार होते हैं। इन परिवारों में अनेक प्रकार की विशेषता देखने को मिलती हैं। परिवार ही एक ऐसा संगठन है जहाँ सभी सदस्यों के बीच प्रगाढ़ और स्थायी मधुर संबंध देखने को मिलता है। संक्षेप में पारिवारिक संगठन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

1. परिवार का स्वरूप सार्वभौमिक होता है।
2. परिवार का आधार मनुष्य की आधारभूत प्रवृत्तियाँ होती हैं।
3. परिवार का प्रभाव मानव व्यक्तित्त्व के ऊपर बड़ा गहरा पड़ता है।
4. परिवार का अपना एक सीमित आकार होता है।
5. परिवार ही सामाजिक संगठन का एक केन्द्र होता है।
6. सदस्यों का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व पारिवारिक संगठन में ही देखने को मिलता है।
7. बालकों को सामाजिक मर्यादा का प्रशिक्षण परिवार में ही मिलता है।
8. समुदाय के रूप में परिवार अस्थायी होता है और संस्था के रूप में वह स्थायी होता है।

◆◆◆

27. परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला क्यों कहते हैं? विभिन्न शिक्षा-शास्त्रियों के द्वारा पारिवारिक शिक्षा के संबंध में दिये गये विचारों की विवेचना कीजिये।

अथवा

बालक का सम्पूर्ण विकास करने में परिवार की क्या भूमिका है? विभिन्न शिक्षा-शास्त्रियों के द्वारा पारिवारिक शिक्षा के संबंध में व्यक्त किये गए विचारों को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

"परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है।" इस कथन को सिद्ध कीजिये तथा यह भी बताइए कि विभिन्न शिक्षा-शास्त्रियों ने पारिवारिक शिक्षा के संबंध में अपनी क्या राय दी?

उत्तर–परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है (Family is the First School of the Child)–बालक माँ के गर्भ से जन्म लेकर जब इस संसार में आता है तो उस समय इस संसार को एक आश्चर्यचकित दृष्टि से देखता है। सम्भवतः इसलिए वह घबराया हुआ होता है और उसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता। सजीव माँस का एक लोथड़ा एक पिण्ड के रूप में समाज को प्राप्त होता है। परिवार उसके आगमन पर प्रसन्न होता है और अपने ऊपर निर्भर प्राणी के लिए, कर्तव्य करने को सदैव तैयार रहता है।

शिशु काफी समय तक परिवार पर निर्भर रहता है। परिवार के सम्पर्क में आकर वह पहले अपने निकट आने वाले लोगों को पहिचानता है। धीरे-धीरे उसके व्यवहारों को सीखने लगता है। उनकी नकल करके वह आत्म-निर्भर बनने का प्रयास करता है। उसमें शारीरिक विकास होता है, भाषा का विकास होता है, सामाजिक विकास होता है, भावात्मक विकास होता है और नैतिक विकास होता है। इन सभी पक्षों का सम्पूर्णतम विकास करने में शिशु को परिवार से पूर्ण सहयोग मिलता है। लेकिन शैशव काल पार करने के उपरान्त अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचने के लिए बालक स्कूल जाता है।

स्कूल में वह अपने शरीर के ही साथ नहीं जाता वरन् नींव के रूप में अपने परिवार को भी ले जाता है। परिवार उसे योग्य बनाता रहता है कि वहाँ वह विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो सके। इसी पारिवारिक शिक्षा की नींव पर बालक को विद्यालय की शिक्षा दी जाती है।

परिवार में ही बालक को संस्कृति और समाज की शिक्षा मिलती है और यहीं वह जीवन में किए जाने वाले अनेक कार्यों को सीख लेता है। यह शिक्षा बच्चे को अपने माता-पिता, भाई-बहन, चाची, दादा-दादी आदि से मिलती है।

शिक्षा दो प्रकार की होती है—एक नियमित शिक्षा और दूसरी अनियमित शिक्षा। नियमित शिक्षा नियमानुसार बच्चे को स्कूल में एक निश्चित अवस्था तक मिलती है लेकिन अनियमित शिक्षा उसे जन्म-काल से लेकर मृत्यु-पर्यन्त अनेक प्रकार के अनुभवों द्वारा प्राप्त होती रहती है। इस तरह सभी प्रकार की शिक्षाओं का आधार यही पारिवारिक शिक्षा ही है। पारिवारिक शिक्षा को यद्यपि अनियमित शिक्षा की ही कोटि में रखा जा सकता है, लेकिन यह इतनी महत्त्वपूर्ण और आवश्यक होती है कि इसके बगैर नियमित शिक्षा दी ही नहीं जा सकती। इसीलिए जो परिवार अपने पारिवारिक शिक्षा के दायित्व को बालक के साथ पूरा नहीं कर पाते बालक को नर्सरी या इसी प्रकार की पूर्व प्राथमिक पाठशालाओं में भेज देते हैं जहाँ पर कि बच्चों को कोई नियमित शिक्षा न हो पारिवारिक शिक्षा, या परिवार से मिलने वाली शिक्षा ही दी जाती है।

पाठशाला के रूप में अपने कर्तव्यों को पूरा करने में आधुनिक परिवार समर्थ नहीं हो पा रहे हैं, इसके कई कारण हैं। कुछ यह है कि–(1) परिवार सीमित हो गया है, (2) अर्थ को प्रधानता देकर, (3) परिवार का हर सदस्य धन पैदा, करना चाहता (4) इसके लिए स्त्री और पुरुष सभी कार्यालय, स्कूलों या मिलों आदि में काम करने चले जाते हैं। अब यहाँ समस्या है कि की देख-रेख कौन करे? कौन उसे परिवार से मिलने वाली शिक्षा प्रदान करे? परिवार केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि अनेक कर्तव्यों को आज पूरा नहीं कर पा रहा है।

अतीत कालीन परिवारों के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए **आगबर्न** तथा **निमकॉफ** ने लिखा है, "इन परिवारों के कार्यों को कार्यों में विभाजित किया जा सकता है–(1) प्रेम संबंधी कार्य, (2) रक्षा संबंधी कार्य, (3) आर्थिक कार्य, (4) मनोरंजन कार्य, (5) पारिवारिक स्थिति, (6) शैक्षिक कार्य तथा, (7) धार्मिक कार्य।" लेकिन आज कुछ दशा बहुत भिन्न है। आज औद्योगीकरण नगरीकरण, आवागमन तथा संदेश-वाहन की सुविधाओं, स्त्रियों का नौकरी करना, विज्ञान की प्रगति आदि कारणों परिवार के कुछ मूलभूत कार्यों को पलट दिया है और कुछ अन्य संस्थाओं जैसे नर्सरी स्कूल किण्डरगार्टन, समाज, राज्य आदि कारण परिवार काफी सीमा तक अपने कर्तव्यों से मुक्त हो गया है।

शिक्षा की दृष्टि से परिवार के महत्त्व को व्यक्त करते हुए **रेमड** ने लिखा है कि **"दो बालक क्यों न एक ही विद्यालय में हों, एक ही समान शिक्षकों से प्रभावित होते हों, एक सा ही अध्ययन करते हों, फिर भी वे अपने सामान्य ज्ञान रुचियों, व्यवहार तथा नैतिकता में अपने घरों के कारण जहाँ से वे आते हैं पूर्णतया भिन्न होते हैं।"**

("Two children may attend the same school, come under the influence of the same teachers, pursue the same studies, yet may differ to each other as regards their general knowledge, their interests, their speed, their bearing and their moral tone according to homes they come from.")

बोगार्डस ने भी परिवार के महत्त्व को एक प्रथम पाठशाला के रूप में व्यक्त करते हुये लिखा है कि **"परिवार समूह मानव पाठशाला है। प्रत्येक व्यक्ति की अविधिक शिक्षा सामान्य रूप में परिवार से प्रारम्भ होती है, बालक का बहुत ही महत्त्वपूर्ण समय परिवार में ही व्यतीत होता है।"**

("Family group is the first human school. The informal education of every person normally begins in the family. The child's more important educational period is spent in family."— **Bogardus)**

बालक को शिक्षा के लिए परिवार या घर के महत्त्व के संबंध में विभिन्न शिक्षार्थियों के विचार (Views of various educationists on the importance of family home in the education of the child.)

बालक की शिक्षा के लिए घर या परिवार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ तक कि घर परिवार को जीवन की शिक्षा की प्रथम पाठशाला भी कहा गया है। इन सभी बातों का उल्लेख ऊपर किया गया और अन्त में यह सिद्ध किया गया कि बालक की प्रथम पाठशाला है। अब हम यहाँ कुछ शिक्षा-शास्त्रियों के ही शब्दों में परिवार के महत्त्व को स्पष्ट करेंगे जो हैं।

1. **रूसो**–प्रकृतिवादी शिक्षा-दार्शनिक रूसो ने परिवार के महत्त्व को सराहा है और कहा कि शिक्षा-संस्थाओं में परिवार ही एक ऐसी शिक्षा संस्था है, जिसे कि प्राकृतिक कहा जा सकता है। इसलिए बच्चे को असली शिक्षा परिवार में ही मिल सकती है। एक पिता के रूप में अपने काल्पनिक पुत्र एकील की शिक्षा के लिए परिवार को ही सबसे उत्तम बताया है।
2. **पेस्टालॉजी** ने परिवार को शिक्षा की एक संस्था के रूप में बड़ा अच्छा साधन माना है। शिक्षा के वास्तविक स्रोत माता-पिता है। **पेस्टालॉजी** कहता है कि **"घर शिक्षा का सर्वोत्तम स्थान और बालक का प्रथम विद्यालय है।"**
("Home is the best place for education and the first school of the child." **—Pestalozzi)**

3. शिक्षाशास्त्री **कमेनियन** का विचार है कि **"परिवार माँ के घुटनों का विद्यालय है।"** *("The school is of mother's knee.")*
4. **हैण्डरसन** के अनुसार, **"बालक की शिक्षा उसके घर से प्रारम्भ होती है। जब वह अन्य व्यक्तियों के कार्यों को देख है, उनका अनुकरण करता है तब वह अनौपचारिक रूप से शिक्षित किया जाता है।**
5. **रेमण्ड** ने बालक की शिक्षा में घर के महत्त्व को व्यक्त करते हुए लिखा है, "घर ही वह स्थान है जहाँ वे महान् उत्पन्न होते हैं जिनकी सामान्य विशेषता सहानुभूति है। घर से ही घनिष्ठ प्रेम की भावनाओं का उदय होता यहीं पर उदारता और अनुदारता निःस्वार्थ और स्वार्थ, न्याय और अन्याय, सत्य और असत्य परिश्रम और आ में अन्तर सीखता है। यहीं उनमें इनमें से बहुत-सी बातों की आदत पहले पड़ती है।"
6. **माण्टेसरी** का कहना है कि "विद्यालय बचपन का घर हैं।" *("Schools are the house of childhood."*
7. **फ्रोबेल** महोदय परिवार या घर के शैक्षिक महत्त्व को व्यक्त करते हुए कहते हैं, **"मातायें आदर्श अध्यापिकायें हैं घर द्वारा दी जाने वाली अनौपचारिक शिक्षा ही सबसे अधिक प्रभावशाली और स्वाभाविक है।"** *("Mothers are the ideal teachers and the informal education given by home is effective and natural."* **—Froebel)**

◆◆◆

28. परिवार को शिक्षा की प्रभावशाली संस्था बनाने हेतु क्या-क्या उपाय किए जा सकते हैं? विवेचना कीजिए।

अथवा

परिवार को शिक्षा की प्रभावशाली संस्था बनाने सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सुझावों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–परिवार को शिक्षा की प्रभावशाली संस्था बनाने से सम्बन्धित मुख्य सुझाव या उपाय निम्नलिखित प्रकार से

1. सम्बन्धों में मधुरता लाना–परिवार के सदस्यों को आपसी सम्बन्धों में मधुरता लाने का प्रयास करना चाहिए बेटे को चाहिए कि अपने बुजुर्गों के साथ स्नेहपूर्ण व आदरपूर्ण व्यवहार करें। उन्हें अपने आपसी मतभेदों को भी शांति से दूर करना चाहिए और बच्चों के समक्ष आपसी प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। इससे बच्चों में मनोवैज्ञानिक सु अहसास जगेगा।

2. बच्चों पर पूर्ण ध्यान देना–यह तो ठीक है कि बढ़ती आवश्यकताओं के कारण माता-पिता दोनों का नौकरी करना मजबूरी है, पर इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं कि वे बच्चों की उपेक्षा करें। उन्हें यह सोचना चाहिए कि वे कमा भी लिए रहे हैं पर बच्चे केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं चाहते, बल्कि अपने माता-पिता का प्यार और दुलार हैं। अतः उन्हें चाहिए कि वे बच्चे पर पूर्ण ध्यान दें। उसकी उपेक्षा न करें। यह ध्यान रखें कि उनकी थोड़ी सी उपेक्षा गलत आदतों तथा अपराधी प्रवृत्ति का शिकार बना सकती है।

3. बच्चों के समक्ष नैतिकता का आदर्श प्रस्तुत करना–क्योंकि बच्चे जो देखते हैं वैसा ही करते हैं इसलिए माता बच्चों के समक्ष नैतिकता का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। उन्हें सदैव सच्चाई और ईमानदारी का आचरण करना चा के अनैतिक आचरण को हमेशा हतोत्साहित करना चाहिए। उन्हें नैतिकतापूर्ण कहानियाँ सुनाकर उनका नैतिक विकास प्रयत्न करना चाहिए।

4. व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करना–परिवारों के वातावरण को आदर्श बनाकर वहाँ बच्चों को इस बात का प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए कि वे अपने से बड़ों, छोटों और घर आने वालों के साथ कैसा व्यवहार करें। परिवार का आदर्श व्यवहार इस कार्य को बहुत आसान बना देता है।

5. बच्चे को सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करना–परिवारों का वातवारण ऐसा बनाया जाए जिससे बच्चे के सभी पक्षों का संतुलित विकास हो सके। शारीरिक विकास की दृष्टि से बच्चों में स्वास्थ्य एवं सफाई सम्बन्धी स का विकास किया जाए। उनके लिए पौष्टिक भोजन की व्यवस्था की जाए। मानसिक विकास के लिए बच्चों की आयु विभिन्न खिलौनों, पत्र-पत्रिकाओं आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए। बच्चे स्वभाव से जिज्ञासु होते हैं। प्रत्येक नई में जानना चाहते हैं। इसलिए वे तरह-तरह के प्रश्न पूछते हैं। इस पर उन्हें डांटकर चुप करा देना मानसिक विकास उचित नहीं। माता-पिता को चाहिए कि वे यथासंभव बच्चे की जिज्ञासा को शांत करने की कोशिश करें। कई बच्चे

खिलौनों को तोड़ते-जोड़ते रहते हैं। इससे भी उनकी मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। अतः ऐसा करने पर बच्चों को डांटा नहीं जाना चाहिए। विभिन्न कहानियाँ सुनाकर उनकी कल्पना शक्ति का विकास किया जाना चाहिए। रात को सोते समय ऐसी कहानियाँ सुनाना व पहेलियाँ पूछना विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

परिवारों को चाहिए कि वे बच्चों को संवेगात्मक दृष्टि से परिपक्व बनाएँ। उनमें क्रोध, भय तथा ईर्ष्या जैसे बुरे संवेगों को पनपने न दें। वे बच्चों के सामने ऐसा आदर्श रखें कि वे दूसरे के सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानते हुए इंसानियत की मिसाल बन जाएँ। इस प्रकार परिवार के सदस्यों का परस्पर तथा दूसरों के साथ परोपकार, त्याग तथा सहयोगपूर्ण आचरण बच्चों को सफल सामाजिक जीवन जीने के लिए तैयार कर सकता है। बड़ों की अपने कर्तव्य व अधिकारों के प्रति जागरूकता बच्चों को भी समाज का आदर्श नागरिक बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

6. सौन्दर्यानुभूति का विकास करना—बच्चों में सौंदर्य बोध का होना बहुत जरूरी है। उनके अंदर ऐसी योग्यता होनी चाहिए कि वे सुंदर वस्तुओं की सराहना कर सकें। अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों को अपने लिए स्वयं कपड़ों का चुनाव करने, घर को सजाने, स्थान के अनुसार छोटे-छोटे पौधे लगाने तथा विभिन्न वस्तुओं की सुरुचिपूर्ण सज्जा करने के लिए प्रोत्साहित करें। यही नहीं उन्हें प्राकृतिक सुंदरता को देखने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जाएँ। सुन्दर वस्तुओं जैसे डाक टिकटों, पत्तियों, फूलों तथा खिलौनों आदि का संग्रह उनमें सौंदर्य बोध लगाने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकता है।

7. रचनात्मक शक्तियों का विकास करना—कई बच्चों में रचनात्मक शक्तियाँ छिपी होती हैं जो उपयुक्त अवसर न मिलने पर अविकसित ही रह जाती हैं। परिवार इन शक्तियों के विकास में विशेष मदद कर सकता है। उदाहरण के लिए, छोटे बच्चे मिट्टी से खेलना पसंद करते हैं, माता-पिता बच्चों को मिट्टी के रंग-बिरंगे खिलौने बनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। इसी प्रकार कागजों व घर में पड़ी बेकार वस्तुओं को सुंदर वस्तुओं का रूप देने का कार्य बच्चे बड़ी अच्छी प्रकार से कर सकते हैं। बस इसके लिए उन्हें बड़ों के थोड़े से मार्गदर्शन व प्रेरणा की आवश्यकता होती है।

8. सब बच्चों के साथ समान व्यवहार—यों तो माता-पिता के लिए सभी बच्चे समान होते हैं, लेकिन कई बच्चों को ऐसा लगता है कि उनके दूसरे भाई-बहनों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और उनकी उपेक्षा की जा रही है। इससे बच्चे में कुंठा व हीनभावना पैदा हो जाती है और उसका स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है। भारतीय परिवारों में आमतौर पर लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक उपेक्षा की शिकार होती हैं। इसलिए माता-पिता को चाहिए कि वे सभी बच्चों के साथ समानता का व्यवहार करें। सभी की उचित मांगों को यथासमय पूरा करने का प्रयास करें। माता-पिता के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से बच्चों के उदंड बनने व बिगड़ने की पूरी संभावना रहती है।

9. विद्यालय के साथ सहयोग—विद्यालय को परिवार का सहयोग अपेक्षित रहता है। इसलिए परिवार को चाहिए कि वे इस बात में रुचि लें कि उनका बच्चा विद्यालय में क्या सीखकर आ रहा है। यदि वे विद्यालय में कराए जा रहे कार्य से संतुष्ट नहीं है तो उसमें सुधार लाने के लिए अपने सुझाव दें। जिस तरह के गुणों की शिक्षा विद्यालय बच्चों को केवल सैद्धांतिक रूप में प्रदान करता है, परिवार व्यावहारिक जीवन में उनका आदर्श प्रस्तुत करें इससे विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा अधिक उपयोगी व सार्थक सिद्ध हो सकेगी।

10. धार्मिक एवं सामाजिक समारोह आयोजित करना—चाहे परिवार अन्य कार्यों में कितने ही व्यस्त क्यों न हों, उन्हें विभिन्न धार्मिक त्योहारों के मानने का समय अवश्य निकालना चाहिए, क्योंकि इससे बच्चे अपनी संस्कृति से परिचित होते हैं और संस्कृति से वे अच्छे संस्कारों को ग्रहण करते हैं। इससे ईश्वर में उनका विश्वास बना रहता है और वे अच्छे मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार विभिन्न सामाजिक समारोहों का आयोजन बच्चे के सामाजिक विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है। अतः माता-पिता को परिवार में यथासंभव इस प्रकार के समारोह आयोजित करते रहना चाहिए। बच्चों का जन्मदिन मनाना, उनके अच्छे अंक पाने पर अपने परिचितों व बच्चे के मित्रों को बुलाकर जलपान कराना आदि इसी प्रकार के आयोजन हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त सुझावों पर ध्यान देकर परिवार बच्चे की जन्मजात क्षमताओं तथा उसके व्यक्तित्त्व के सर्वांगीण विकास में बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। परिवारों को अपने शैक्षिक दायित्वों को समझना चाहिए तभी वे अपने बच्चे को ठीक ढंग से समझने तथा उनका सही दिशा में विकास करने में सफल हो सकेंगे, लेकिन यदि परिवार किन्हीं कारणों से स्वयं को इस जिम्मेदारी को निभाने में असमर्थ पाते हैं या अधिक व्यस्तता के कारण उनके पास अपने बच्चों के लिए समय नहीं तो उन्हें अपने बच्चों को बोर्डिंग स्कूल में भेज देना चाहिए, जिससे वे सबके बीच में रहते हुए भी सबकी उपेक्षा के दुःखद अहसास से बच सकें।

◆◆◆

29. परिवार पर शिक्षा के प्रभाव तथा पारिवारिक शिक्षा के दोष या कमियों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

परिवार पर शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ता है? पारिवारिक शिक्षा के दोषों का वर्णन कीजिये।

उत्तर–परिवार पर शिक्षा का प्रभाव **निम्नलिखित प्रकार** से पड़ता है–

1. राज्य और समाज मिलकर बालकों की शिक्षा के लिए विभिन्न विद्यालयों की रचना करते हैं। परिवार इन विद्यालयों की शिक्षा पाने के लिए रुपये पैसे खर्च करता है। इस शिक्षा से परिवार का स्तर ऊँचा उठता है।
2. शिक्षा प्राप्त करके परिवार का स्तर ऊँठा उठता है, समाज परिवारों से बढ़ता है और समाज की प्रगति होती है।
3. विद्यालयों से मिलने वाली व्यावसायिक शिक्षा से परिवार का आर्थिक स्तर बढ़ता है। परिवार में होने वाले व्यवसाय की प्रगति होती है।
4. शिक्षा से बालकों का सांस्कृतिक विकास होता है। इससे परिवार का सांस्कृतिक पिछड़ापन दूर होता है। अन्धविश्वास समाप्त होता है।
5. शिक्षा प्राप्त करने से परिवार का रहन-सहन ऊँचा उठता है। सभ्यता का विकास होता है और शिक्षा से ही परिवार आगे बढ़ता है।
6. परिवार की जो समस्यायें होती हैं, वे शिक्षा प्राप्त किये सदस्यों के द्वारा दूर की जाती हैं। वे बुद्धिमानी के साथ अपनी समस्यायें सुलझाते हैं।

बालकों की शिक्षा में घर तथा परिवार के शैक्षिक कर्तव्य (Duties of Family or Home in the Education of the Child)–अपने प्रत्येक सदस्य की शिक्षा के संबंध में परिवार के घर वालों के **निम्नलिखित कर्तव्य** हैं–

1. परिवार वालों को चाहिए कि बालक को निश्चित अवस्था में शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यालय भेजें, क्योंकि इस प्रकार की शिक्षा की नींव परिवार बना सकता है, लेकिन उस पर शिक्षा का भव्य भवन नहीं तैयार कर सकता।
2. परिवार वालों को चाहिए कि अच्छे ढंग से बालकों का पालन-पोषण करें।
3. परिवार वालों का कर्तव्य है कि वे बालकों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में योग दें।
4. बच्चों को अच्छे कार्य करने तथा अच्छे व्यवहार करने की शिक्षा देनी चाहिए।
5. बच्चे जब कुछ पढ़ने लिखने लगें, तो उनकी रुचि की अच्छी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं की व्यवस्था करें।
6. बच्चों को शिक्षा के लिए ऐसे विद्यालयों में भेजना चाहिए, जो उनके विकास में सहायक हों।
7. बच्चों में अच्छी आदतें डाली जानी चाहिए।
8. घर पर बच्चों को पर्याप्त कार्य दिये जायें, जिससे वे सक्रिय रहें।
9. बालकों के विकास के लिए अच्छे से अच्छा वातावरण देना चाहिए।
10. बच्चों को आज्ञा-पालन तथा शिष्टाचार की शिक्षा दी जाये।
11. विद्यालय के अध्यापक जो सूचनाएँ माँगें उन्हें दी जानी चाहिए।
12. विद्यालय के लोग जो परामर्श दें, उनका पालन करना चाहिए।
13. बच्चों को घर पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए पढ़ने-लिखने का वातावरण दिया जाये।
14. बच्चों की शिक्षा विषयक जिन चीजों की आवश्यकता हो, उनको पूरा करना चाहिए।

पारिवारिक शिक्षा के दोष या कमियाँ *(Defects of Education given by Family)*

परिवार में यदि बालकों को अच्छी शिक्षा मिली तो बालक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं और यदि खराब शिक्षा मिली तो उनका जीवन चौपट हो जाता है। आज बालक विद्यालयों में उद्दंडता का प्रदर्शन करता है, अनुशासनहीनता का परिचय देता है। इसका कारण है कि परिवार में इन्हें इसी उद्दंडता की शिक्षा मिली है। आज हमारे देश के परिवार बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं, जिससे बच्चों की उद्दण्डता ही समाज के सामने आती है। इसका अर्थ है कि हमारी पारिवारिक शिक्षा में अनेक दोष हैं। संक्षेप में **पारिवारिक शिक्षा के दोषों** का उल्लेख नीचे किया गया है।

1. परिवार बच्चों की प्रगति के लिए अच्छा वातावरण नहीं दे पा रहे हैं।
2. परिवार के लोग बच्चों पर घर की जिम्मेदारी का भार छोड़ देते हैं।

3. परिवारों की समस्याएँ बढ़ गई हैं, जिससे परिवार के लोग अच्छा वातावरण नहीं दे पाते।
4. पिछड़े परिवारों की रहन-सहन या भाषा आदि का स्तर ठीक नहीं है, जिससे बच्चों को गलत शिक्षा मिलती है।
5. परिवार के सदस्य यदि अशिक्षित हैं तो बच्चों का विकास उस वातावरण में ठीक से नहीं हो पाता।
6. बालकों का सामाजिक विकास परिवार में ठीक प्रकार नहीं हो पाता, क्योंकि परिवारों की सामाजिक दशा बड़ी ही शोचनीय है।
7. परिवार के बच्चों को अनेकों समस्याओं का सामना करना होता है, जिससे उनके मस्तिष्क में अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं।
8. परिवार के लोगों को बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान नहीं होता, जिससे वे बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर पाते। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों में मानसिक ग्रन्थियों का निर्माण हो जाता है। ये मानसिक ग्रन्थियाँ उनके जीवन को ले डूबती हैं।
9. परिवार के लोग स्वयं गलत व्यवहार करते हैं। इन्हीं व्यवहारों को बालक भी सीख लेता है।
10. परिवार के किसी भी सदस्य की आदत खराब हुई तो उसका प्रभाव बच्चों पर पड़े बिना न रहेगा।
11. तलाक आदि नियमों के कारण भी अनेकों परिवारों के असंख्य बच्चे असहाय, अशिक्षित, असभ्य और असंस्कृत हो जाते हैं।

इस प्रकार परिवार अपने शिक्षा संबंधी दायित्व को बिल्कुल भूल चुका है। ऐसे परिवारों में जो बच्चे जन्म लेते हैं, उनको उपयुक्त पारिवारिक शिक्षा प्राप्त होती है। परिवार से बच्चों को अच्छी शिक्षा मिले इसके लिए उक्त कमियों को दूर करना होगा।

◆◆◆

स्थानीय समुदाय (Local Community)

प्र. समुदाय से आपका क्या अभिप्राय है? समुदाय के अनौपचारिक शैक्षिक-कार्यों तथा समुदाय को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने संबंधी सुझावों का उल्लेख कीजिये।

उत्तर–समुदाय अनौपचारिक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके शैक्षिक कार्यों पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि समुदाय से हमारा क्या अभिप्राय है।

समुदाय का अर्थ (Meaning of Community)–समुदाय के लिए अंग्रेजी में Community शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है *(1) Com, (2) Munis*। कॉम *(Com)* का अर्थ है–एक साथ *(Together)* और *Munis* का अर्थ है–सेवा करना *(To serve)*। इस प्रकार इन दोनों शब्दों से मिलकर बने *Community* शब्द का अर्थ हुआ एक साथ सेवा करना *(To serve together)*। दूसरे शब्दों में समुदाय का अर्थ व्यक्तियों के एक ऐसे समूह से लिया जाता है, जिनके सदस्यों में परस्पर सेवा भावना होती है तथा जो हर स्थिति में एक-दूसरे के साथ सहयोग करने के लिए तैयार रहते हैं। समुदाय के सभी सदस्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं।

समुदाय की कुछ परिभाषाएँ (Some Definitions of Community)–समुदाय की कुछ मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

1. ऑगबर्न तथा निमकाफ के अनुसार–**"किसी सीमित क्षेत्र के अंतर्गत सामाजिक जीवन के संपूर्ण संगठन को समुदाय समझा जा सकता है।"** *(A community may be thought of as the total organisation of social life within a limited area.)*

2. ब्राउनेल के अनुसार : "समुदाय से मेरा अभिप्राय उस समूह से जिसमें अनेक प्रकार के व्यक्ति विभिन्न क्षमताओं तथा योग्यताओं से युक्त होकर पड़ोसियों की भांति मिलकर साथ रहते हैं। यह प्राथमिक समूह है, जिसमें जीवन के अनेक कार्य परस्पर सहयोग से किए जाते हैं।"

(By a community I mean a small diversified group of people young and old, male and female, with different skills and abilities, living together as kin neighbourers. It is a primary group in which many of the major functions of life are carried on co-operatively within the group itself.)

समुदाय की उपरोक्त तथा अन्य अनेक विचारकों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि–

1. समुदाय व्यक्तियों का एक समूह है।
2. इसके सदस्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं।
3. इसके सभी सदस्यों में 'हम भावना' (We feeling) होती है। सब इस भावना के कारण एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं।
4. इसकी अपनी एक जीवन शैली होती है।
5. इसके सभी सदस्यों में परस्पर सहयोग एवं सेवा भाव होता है।

समुदाय का आकार छोटा भी हो सकता है जैसे परिवार तथा बड़ा भी जैसे संपूर्ण विश्व।

समुदाय का अर्थ जानने के बाद अब प्रश्न उठता है कि बच्चे की शिक्षा में इसकी क्या भूमिका हो सकती है?

शिक्षा के अनौपारिक साधन के रूप में समुदाय के कार्य अथवा बच्चे की शिक्षा में समुदाय की भूमिका *(Functions of community as an informal agency of education Or Role of community in education of child)*

समुदाय बच्चे की शिक्षा को औपचारिक व अनौपचारिक दोनों रूपों में प्रभावित करता है। जहाँ तक इसके औपचारिक कार्यों का संबंध है इन्हें निम्न शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है–

1. विद्यालय खोलना (To open schools)–औपचारिक शिक्षा की मुख्य संस्था है विद्यालय और इन विद्यालयों को खोलने का कार्य समुदाय ही करता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक समुदाय की अपनी एक संस्कृति होती है, जिसे वह सुरक्षित आगे आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाना चाहता है और उसका विकास करना चाहता है। इसी उद्देश्य से वह शिक्षा संस्थाएँ खोलता है, जो बच्चे की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण (To determine the nature of Education)– विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा का स्वरूप या संरचना कैसी हो यह निश्चित करने का कार्य भी समुदाय करता है। समुदाय ही यह निर्धारित करता है कि शिक्षा का स्वरूप 10+2+2 हो या 10+2+3 या कुछ और। इस समय भारत में 10+2+3 के रूप में शिक्षा संरचना की गई है।

3. शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण (To determine the aims of Education)–शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। जब तक हम औपचारिक शिक्षा के कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं करते, तब तक उससे समय व श्रम की बर्बादी के अतिरिक्त कोई भी लाभ नहीं होगा। औपचारिक शिक्षा के लिए उद्देश्यों के निर्धारण का कार्य भी समुदाय ही करता है। समुदाय यह देखता है कि उसकी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक आवश्यकताएँ व समस्याएँ क्या हैं? इसके मुख्य आदर्श कौन से हैं और फिर इन सबके आधार पर वह शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए, आज भारत की कुछ मुख्य आवश्यकताएँ हैं–प्रजातंत्र को सफल बनाना, गरीबी व बेरोजगारी को दूर करना, लोगों को अंध-विश्वासों व पुरानी रूढ़ियों के घेरे से बाहर निकालना आदि। इनको पूरा करने के लिए यहाँ प्रजातांत्रिक नागरिकता का विकास करना, आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण जैसे शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

4. पाठ्यक्रम का निर्धारण (To determine curriculum)–समुदाय केवल शैक्षिक उद्देश्य ही निश्चित नहीं करता उन्हें प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम की रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, भारत में आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम में कार्य-अनुभव (Work experience), समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW) जैसे विषयों को सम्मिलित किया जा रहा है तथा माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जा रहा है।

5. सार्वभौमिक शिक्षा (Universal Education)–समुदाय शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए अपने नागरिकों के लिए सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था करता है। भारत के संविधान में भी स्पष्ट निर्देश है कि राज्य अपने 7 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति की लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

6. प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था (To manage adult education)–समुदाय की प्रगति उसमें रहने वालों की प्रगति पर निर्भर करती है। व्यक्तियों की प्रगति में शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए समुदाय केवल बच्चों की शिक्षा की ही व्यवस्था नहीं करता वरन् उन सभी प्रौढ़ों की शिक्षा का भी प्रबन्ध करता है, जो पहले किन्हीं कारणों से शिक्षा सुविधाओं से वंचित रह गए थे। भारत में राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (National Literacy Mission) इसी उद्देश्य से चलाए जा रहे हैं।

7. शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था (To arrange money for education)–विद्यालय खोलने तथा अन्य शैक्षिक कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है और धन जुटाने का यह कार्य भी समुदाय ही करता है।

यही नहीं, समुदाय तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा के लिए अलग से तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा संस्थान खोलता है। पिछड़े वर्गों एवं विकलांगों के लिए शिक्षा का विशेष प्रबन्ध करता है। महिलाओं की शिक्षा की भी व्यवस्था करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा के औपचारिक साधन के रूप में समुदाय महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। अब देखना यह है कि इसके अनौपचारिक शैक्षिक कार्य कौन से हैं?

समुदाय के अनौपचारिक शैक्षिक कार्य *(Informal Educational Functions of Community)*

समुदाय के अनौपचारिक शैक्षिक प्रभाव भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। यह अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के व्यक्तित्त्व के निम्न पक्षों को प्रभावित करता है–

1. शारीरिक विकास (Physical Development)–बच्चे का शारीरिक विकास अच्छे व स्वस्थ पर्यावरण, समुदाय में उपलब्ध चिकित्सा, उचित व्यायाम तथा खेलों आदि की सुविधाओं पर निर्भर करता है। समुदाय सफाई की विशेष व्यवस्था करता है, जिससे उसमें रहने वालों को अच्छा परिवेश मिल सके। वह उनके लिए पीने के लिए स्वच्छ जल तथा अन्य खाद्य पदार्थों की व्यवस्था भी करता है। समुदाय में अनेक स्वास्थ्य केन्द्र व चिकित्सालय होते हैं जो नागरिकों के स्वास्थ्य की देखरेख करते हैं। इसके अतिरिक्त समुदाय में अनेक पार्क, खेल के मैदान तथा स्टेडियम आदि होते हैं जो बच्चों के शारीरिक विकास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

2. मानसिक विकास (Mental Development)–समुदाय द्वारा खोले गए विद्यालय तो बच्चे का मानसिक विकास करते ही हैं, अप्रत्यक्ष रूप से समुदाय भी इसे प्रभावित करता है। समुदाय पुस्तकालय खोलता है। ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध पुस्तकें प्रकाशित करता है। समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ निकालता है, जिससे लोगों का मानसिक विकास होता है।

3. सामाजिक विकास (Social Development)–सामाजिक विकास साथ-साथ रहने से होता है। समुदाय में विभिन्न धर्मों, जातियों के लोग मिलकर एक साथ रहते हैं, सुख-दुख में एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं, एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हैं। इससे बच्चे का सामाजिक विकास करने में मदद मिलती है। समाज में समय-समय पर कई मेले लगते हैं, सामाजिक, धार्मिक व राष्ट्रीय पर्व मनाए जाते हैं, जुलूस आदि निकाले जाते हैं। इन सबसे बच्चों में सामाजिक गुणों का विकास बड़ी आसानी से हो जाता है।

4. नैतिक विकास (Moral Development)–समुदाय का वातावरण बच्चे के चारित्रिक पक्ष को भी प्रभावित करता है। यदि समुदाय का वातावरण अच्छा है तथा उसमें रहने वाले लोग सच्चाई, ईमानदारी तथा भ्रातृत्व जैसे मूल्यों में विश्वास करते हैं तो बच्चे पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा और उसके चरित्र का उत्थान होगा। इसके विपरीत यदि समुदाय में नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है तो बच्चों का नैतिक पतन होगा।

5. सांस्कृतिक विकास (Cultural Development)–बच्चे का सांस्कृतिक विकास भी समुदाय से प्रभावित होता है। प्रत्येक समुदाय की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है। जिसकी छाप उसके सदस्यों के जीवन पर देखने को मिलती है। समुदाय में रहकर बच्चा उसकी भाषा, रहन-सहन व खान-पान के विशेष ढंग तथा रीति-रिवाजों व मूल्यों को अनजाने ही ग्रहण कर लेता है। समुदाय में मनाए जाने वाले विभिन्न पर्व भी बच्चों को प्रभावित करते हैं। इन सबसे बच्चों का सांस्कृतिक विकास करने में मदद मिलती है।

6. राजनैतिक प्रभाव (Political Effect)–बच्चा राजनैतिक प्रभावों को भी समुदाय से ग्रहण करता है। प्रत्येक समुदाय किसी न किसी राजनैतिक व्यवस्था में विश्वास करता है और अपने नागरिकों को उसी के अनुरूप अच्छे नागरिक के रूप में तैयार करना चाहता है। यह कार्य तो वह विद्यालयों के माध्यम से करता ही है। इसके अतिरिक्त समुदाय में विभिन्न राजनेताओं के विचारों को उनके भाषणों के माध्यम से सुनकर उसकी अपनी राजनैतिक सोच विकसित हो जाती है। वह विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं तथा उनके गुण-दोषों से अवगत हो जाता है।

समुदाय को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए सुझाव *(Suggestions to Make Community an Effective Agency of Education)*

समुदाय के उपर्युक्त शैक्षिक कार्यों को देखकर स्पष्ट है कि इसके शैक्षिक प्रभावों से इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन उल्लेखनीय है कि समुदाय का दूषित वातावरण बच्चों को बिगाड़ने का कार्य ही करता है, बनाने का नहीं। कई समुदाय अपने

समुदाय की उपरोक्त तथा अन्य अनेक विचारकों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि–

1. समुदाय व्यक्तियों का एक समूह है।
2. इसके सदस्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं।
3. इसके सभी सदस्यों में 'हम भावना' (We feeling) होती है। सब इस भावना के कारण एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं।
4. इसकी अपनी एक जीवन शैली होती है।
5. इसके सभी सदस्यों में परस्पर सहयोग एवं सेवा भाव होता है।

समुदाय का आकार छोटा भी हो सकता है जैसे परिवार तथा बड़ा भी जैसे संपूर्ण विश्व।

समुदाय का अर्थ जानने के बाद अब प्रश्न उठता है कि बच्चे की शिक्षा में इसकी क्या भूमिका हो सकती है?

शिक्षा के अनौपारिक साधन के रूप में समुदाय के कार्य अथवा बच्चे की शिक्षा में समुदाय की भूमिका *(Functions of community as an informal agency of education Or Role of community in education of child)*

समुदाय बच्चे की शिक्षा को औपचारिक व अनौपचारिक दोनों रूपों में प्रभावित करता है। जहाँ तक इसके औपचारिक कार्यों का संबंध है इन्हें निम्न शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है–

1. विद्यालय खोलना (To open schools)–औपचारिक शिक्षा की मुख्य संस्था है विद्यालय और इन विद्यालयों को खोलने का कार्य समुदाय ही करता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक समुदाय की अपनी एक संस्कृति होती है, जिसे वह सुरक्षित आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाना चाहता है और उसका विकास करना चाहता है। इसी उद्देश्य से वह शिक्षा संस्थाएँ खोलता है, जो बच्चे की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण (To determine the nature of Education)– विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा का स्वरूप या संरचना कैसी हो यह निश्चित करने का कार्य भी समुदाय करता है। समुदाय ही यह निर्धारित करता है कि शिक्षा का स्वरूप 10+2+2 हो या 10+2+3 या कुछ और। इस समय भारत में 10+2+3 के रूप में शिक्षा संरचना की गई है।

3. शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण (To determine the aims of Education)–शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। जब तक हम औपचारिक शिक्षा के कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं करते, तब तक उससे समय व श्रम की बर्बादी के अतिरिक्त कोई भी लाभ नहीं होगा। औपचारिक शिक्षा के लिए उद्देश्यों के निर्धारण का कार्य भी समुदाय ही करता है। समुदाय यह देखता है कि उसकी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक आवश्यकताएँ व समस्याएँ क्या हैं? इसके मुख्य आदर्श कौन से हैं और किन बातों सबके आधार पर वह शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए, आज भारत की कुछ मुख्य आवश्यकताएँ हैं–प्रजातंत्र को सफल बनाना, गरीबी व बेरोजगारी को दूर करना, लोगों को अंध-विश्वासों व पुरानी रूढ़ियों के घेरे से बाहर निकालना आदि। इनको पूरा करने के लिए यहाँ प्रजातांत्रिक नागरिकता का विकास करना, आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण जैसे शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

4. पाठ्यक्रम का निर्धारण (To determine curriculum)–समुदाय केवल शैक्षिक उद्देश्य ही निश्चित नहीं करता, उन्हें प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम की रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, भारत में आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम में कार्य-अनुभव (Work experience), समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW) जैसे विषयों को सम्मिलित किया जा रहा है तथा माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जा रहा है।

5. सार्वभौमिक शिक्षा (Universal Education)–समुदाय शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए अपने नागरिकों के लिए सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था करता है। भारत के संविधान में भी स्पष्ट निर्देश है कि राज्य अपने 7 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति की लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

6. प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था (To manage adult education)–समुदाय की प्रगति उसमें रहने वालों की प्रगति पर निर्भर करती है। व्यक्तियों की प्रगति में शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए समुदाय केवल बच्चों की शिक्षा की ही व्यवस्था नहीं करता वरन् उन सभी प्रौढ़ों की शिक्षा का भी प्रबन्ध करता है, जो पहले किन्हीं कारणों से शिक्षा सुविधाओं से वंचित रह गए थे। भारत में राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (National Literacy Mission) इसी उद्देश्य से चलाए जा रहे हैं।

7. शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था (To arrange money for education)–विद्यालय खोलने तथा अन्य शैक्षिक कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है और धन जुटाने का यह कार्य भी समुदाय ही करता है।

यही नहीं, समुदाय तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा के लिए अलग से तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा संस्थान खोलता है। पिछड़े वर्गों एवं विकलांगों के लिए शिक्षा का विशेष प्रबन्ध करता है। महिलाओं की शिक्षा की भी व्यवस्था करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा के औपचारिक साधन के रूप में समुदाय महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। अब देखना यह है कि इसके अनौपचारिक शैक्षिक कार्य कौन से हैं?

समुदाय के अनौपचारिक शैक्षिक कार्य *(Informal Educational Functions of Community)*

समुदाय के अनौपचारिक शैक्षिक प्रभाव भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। यह अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के व्यक्तित्व के **निम्न पक्षों** को प्रभावित करता है–

1. शारीरिक विकास (Physical Development)–बच्चे का शारीरिक विकास अच्छे व स्वस्थ पर्यावरण, समुदाय में उपलब्ध चिकित्सा, उचित व्यायाम तथा खेलों आदि की सुविधाओं पर निर्भर करता है। समुदाय सफाई की विशेष व्यवस्था करता है जिससे उसमें रहने वालों को अच्छा परिवेश मिल सके। वह उनके लिए पीने के लिए स्वच्छ जल तथा अन्य खाद्य पदार्थों की व्यवस्था भी करता है। समुदाय में अनेक स्वास्थ्य केन्द्र व चिकित्सालय होते हैं जो नागरिकों के स्वास्थ्य की देखरेख करते हैं। इसके अतिरिक्त समुदाय में अनेक पार्क, खेल के मैदान तथा स्टेडियम आदि होते हैं जो बच्चों के शारीरिक विकास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

2. मानसिक विकास (Mental Development)–समुदाय द्वारा खोले गए विद्यालय तो बच्चे का मानसिक विकास करते ही हैं, अप्रत्यक्ष रूप से समुदाय भी इसे प्रभावित करता है। समुदाय पुस्तकालय खोलता है। ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध पुस्तकें प्रकाशित करता है। समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ निकालता है, जिससे लोगों का मानसिक विकास होता है।

3. सामाजिक विकास (Social Development)–सामाजिक विकास साथ-साथ रहने से होता है। समुदाय में विभिन्न धर्मों, जातियों के लोग मिलकर एक साथ रहते हैं, सुख-दुख में एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं, एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हैं। इससे बच्चे का सामाजिक विकास करने में मदद मिलती है। समाज में समय-समय पर कई मेले लगते हैं, सामाजिक, धार्मिक व राष्ट्रीय पर्व मनाए जाते हैं, जुलूस आदि निकाले जाते हैं। इन सबसे बच्चों में सामाजिक गुणों का विकास बड़ी आसानी से हो जाता है।

4. नैतिक विकास (Moral Development)–समुदाय का वातावरण बच्चे के चारित्रिक पक्ष को भी प्रभावित करता है। यदि समुदाय का वातावरण अच्छा है तथा उसमें रहने वाले लोग सच्चाई, ईमानदारी तथा भ्रातृत्व जैसे मूल्यों में विश्वास करते हैं तो बच्चे पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा और उसके चरित्र का उत्थान होगा। इसके विपरीत यदि समुदाय में नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है तो बच्चों का नैतिक पतन होगा।

5. सांस्कृतिक विकास (Cultural Development)–बच्चे का सांस्कृतिक विकास भी समुदाय से प्रभावित होता है। प्रत्येक समुदाय की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है। जिसकी छाप उसके सदस्यों के जीवन पर देखने को मिलती है। समुदाय में रहकर बच्चा उसकी भाषा, रहन-सहन व खान-पान के विशेष ढंग तथा रीति-रिवाजों व मूल्यों को अनजाने ही ग्रहण कर लेता है। समुदाय में मनाए जाने वाले विभिन्न पर्व भी बच्चों को प्रभावित करते हैं। इन सबसे बच्चों का सांस्कृतिक विकास करने में मदद मिलती है।

6. राजनैतिक प्रभाव (Political Effect)–बच्चा राजनैतिक प्रभावों को भी समुदाय से ग्रहण करता है। प्रत्येक समुदाय किसी न किसी राजनैतिक व्यवस्था में विश्वास करता है और अपने नागरिकों को उसी के अनुरूप अच्छे नागरिक के रूप में तैयार करना चाहता है। यह कार्य तो वह विद्यालयों के माध्यम से करता ही है। इसके अतिरिक्त समुदाय में विभिन्न राजनेताओं के विचारों को उनके भाषणों के माध्यम से सुनकर उसकी अपनी राजनैतिक सोच विकसित हो जाती है। वह विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं तथा उनके गुण-दोषों से अवगत हो जाता है।

समुदाय को शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए सुझाव *(Suggestions to Make Community an Effective Agency of Education)*

समुदाय के उपर्युक्त शैक्षिक कार्यों को देखकर स्पष्ट है कि इसके शैक्षिक प्रभावों से इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन उल्लेखनीय है कि समुदाय का दूषित वातावरण बच्चों को बिगाड़ने का कार्य ही करता है, बनाने का नहीं। कई समुदाय अपने

राजनैतिक व सांस्कृतिक आदर्शों को बच्चों पर थोपते हैं, इससे बच्चे में स्वतंत्र व आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास नहीं हो पाता। दमन के कारण बच्चे का स्वाभाविक विकास रुक जाता है और उसकी सोच संकुचित हो जाती है, जिसके कई घातक परिणाम सामने आते हैं। अतः यह आवश्यक है कि अपने शैक्षिक दायित्वों का अच्छी प्रकार से निर्वाह करने के लिए समुदाय **निम्नलिखित बातों** पर विशेष ध्यान दें–

1. अच्छे वातावरण का निर्माण (To make good environment)–कोई भी बालक जन्म से अच्छा या बुरा नहीं होता उसका वातावरण ही उसे अच्छा या बुरा बनाता है। अतः समुदाय को बुराइयों को दूर करके अपने वातावरण को अच्छा बनाने का प्रयास करना चाहिए। समुदाय का अच्छा वातावरण बच्चे में अच्छे सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास करने में सहायक सिद्ध होगा।

2. आदर्श प्रस्तुत करना (Act as a role model)–बच्चों में बड़ों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है। अतः समुदाय के सदस्यों को उसके समक्ष अच्छे व्यवहार तथा अच्छे सामाजिक व नैतिक मूल्यों का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे वे स्वयं को उन्हीं के अनुरूप ढाल सके। चंद्रशेखर, भगत सिंह, महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस तथा पंडित नेहरू जैसे महापुरुषों का जीवन बच्चों के लिए आज भी प्रेरणा का स्त्रोत है। इसी प्रकार सेवा, सत्य, त्याग, ईमानदारी तथा सहनशीलता जैसे अच्छे गुणों का आदर्श भी बच्चे के समक्ष रखा जाना चाहिए।

3. व्यापक दृष्टिकोण का विकास करना (To develop comprehensive approach)–समुदाय का अर्थ ही व्यक्तियों के एक ऐसे समूह से लिया जाता है, जिसके सदस्यों में परस्पर सेवा भावना हो। इस सेवाभाव के लिए दृष्टिकोण का व्यापक होना आवश्यक है। आज हम देखते हैं कि समुदाय के सदस्यों का दृष्टिकोण संकुचित होता जा रहा है। वहाँ जातीयता, प्रांतीयता तथा सांप्रदायिकता का विष इस प्रकार फैला हुआ है कि बच्चे भी उसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह पाते। सांप्रदायिक झगड़े व हिंसा हमारे जीवन का अंग बन चुके हैं। अतः समुदाय को चाहिए कि वह अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाए। स्वयं को जाति, प्रांत या संप्रदाय विशेष के हितों तक सीमित न रखे तभी बच्चे को दृष्टिकोण भी व्यापक बन सकेगा।

4. स्वतंत्र चिंतन की योग्यता का विकास (Development of free thinking ability)–समुदाय को चाहिए कि वह अपने सदस्यों को अपनी अच्छी व बुरी सभी बातों को अपनाने के लिए बाध्य न करे। वह बच्चे को स्वतंत्र रूप से विकास करने दे तथा उनमें ऐसी क्षमता का विकास करे कि वह स्वयं यह सोच सके कि क्या उचित है क्या अनुचित तथा इसी आधार पर यह निर्णय करे कि उसे क्या करना चाहिए। समुदाय अपने सदस्यों में समालोचनात्मक क्षमताओं का विकास करे, जिससे वे अपनी संस्कृति की समीक्षा करें और उसमें से केवल अच्छी बातों को ही ग्रहण करें।

5. अन्य साधनों के साथ सहयोग (Cooperation with other agencies)–यदि समुदाय अन्य शैक्षिक साधनों जैसे परिवार, विद्यालय एवं राज्य के साथ सहयोग करे तो इसका शैक्षिक महत्त्व बहुत बढ़ जाएगा। समुदाय के पास अनेक भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान होते हैं। यदि विद्यालय इनका प्रयोग करे तो उसके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा अधिक सार्थक हो सकती है। समुदाय विद्यालय को ऐसी सुविधाएँ प्रदान कर सकता है, जिनसे छात्र विद्यालय में प्राप्त सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यावहारिक रूप में प्रयोग कर सकते हैं। समुदाय विद्यालय को अपनी शिक्षा को अधिक उपयोगी बनाने के लिए रचनात्मक सुझाव भी दे सकता है।

6. राज्य का सहयोग (Cooperation of state)–राज्य का सहयोग भी समुदाय की शिक्षा को प्रभावशाली साधन बनाने में मदद कर सकता है। राज्य को चाहिए कि वह समुदाय को विद्यालय खोलने एवं उन्हें चलाने के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दे। उसके द्वारा खोले गए विद्यालयों का समय-समय पर निरीक्षण करे एवं उनके शैक्षिक स्तर में सुधार लाने के लिए सुझाव दे। राज्य को रेडिया, दूरदर्शन तथा चलते-फिरते पुस्तकालयों आदि के माध्यम से भी समुदाय के शैक्षिक कार्यों में सहायता करना चाहिए।

7. सामुदायिक विद्यालय खोलना–सामुदायिक विद्यालय समुदाय द्वारा खोले जाने वाले वे विद्यालय हैं, जिन्हें समुदाय के लोगों के द्वारा ही चलाया जाता है और जिनका उद्देश्य समुदाय का अधिक से अधिक हित करना होता है। यदि समुदाय इस प्रकार के विद्यालय खोलता है तो विद्यालय व समुदाय एक-दूसरे के निकट संपर्क में आएंगे, दोनों में परस्पर आदान-प्रदान के अधिक अवसर उपलबध हो सकेंगे तथा समुदाय का शैक्षिक महत्त्व और अधिक बढ़ सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समुदाय अनौपचारिक शिक्षा का एक ऐसा साधन है, जो औपचारिक रूप से भी अनेक शैक्षिक कार्य संपन्न करता है, लेकिन वर्तमान सामुदायिक परिस्थितियों को देखते हुए यह आवश्यक लगता है कि उपर्युक्त सुझावों पर ध्यान दिया जाए, समुदाय के वातावरण में सुधार लाने का प्रयास किया जाए ताकि इसे शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाया जा सके। अन्य शैक्षिक साधनों के साथ भी इसे सहयोग करना चाहिए।

◆◆◆

समुदाय से आप क्या समझते हैं? बच्चों को शिक्षित करने में समुदाय की भूमिका की विवेचना कीजिये।

अथवा

समुदाय किसे कहते हैं? समुदाय में शिक्षा के दायित्व या भूमिका तथा विद्यालयों और समुदाय के आपसी संबंधों को स्पष्ट करें।

अथवा

समुदाय से आपका क्या अभिप्राय है? अपने बच्चों को शिक्षित करने में समुदाय के योगदान का वर्णन करें।

उत्तर–समुदाय और शिक्षा (Community and Education)–मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य के जीवन के आरम्भ काल को बालपन का नाम दिया जाता है। मनुष्य जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक समाज या समुदाय का अभिन्न अंग बनकर रहता है। उसे समाज में रहकर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है, जिसकी सहायता से समाज व देश का विकास भली प्रकार होता है। अतः उसे समाज की इच्छाओं, आवश्यकताओं व संदर्भों को देखते हुए शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जिससे वह समाज की सभी उपलब्धियों को भली प्रकार प्राप्त कर प्रसन्नता का अनुभव प्राप्त करें।

समुदाय क्या है (What is a Community)–समुदाय अंग्रेजी के दो शब्दों *'Com'* और *'Munis'* से मिलकर बना है। *Com* का अर्थ है *Together* या इकट्ठा और *Munis* का अर्थ है *To serve* सेवा करना अर्थात् इकट्ठे रह कर सेवा करना। अर्थात् समुदाय व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो एक साथ मिलकर-जुलकर दूसरों की सेवा सुश्रुमा करता है। इस समूह के हित एक समान होते हैं। समुदाय एक गहन व व्यापक और विस्तृत शब्द है, जिसमें जाति, उपजाति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व सभी आ जाते हैं।

हर क्षेत्र में विश्व की नवीन उपलब्धियों के कारण राष्ट्रों का आकार अत्यधिक संकुचित हो गया है और इस कारण समुदाय की कल्पना भी बहुत व्यापक हो गई है, क्योंकि छोटे ग्रामीण समुदायों का स्थान अब विशाल विश्व समुदाय लेता जा रहा है। विभिन्न शिक्षाविदों व शिक्षा शास्त्रियों ने समुदाय की अनेकों परिभाषाएँ दी हैं–

कुक एण्ड कुक के विचार, "समुदाय एक ऐसी जीवन विधि है, जो एक भौगोलिक क्षेत्र में संगठित होती है।"

कुकोवर के विचारानुसार, "केवल सामान्य जीवन से संबंधित व्यवहार ही उचित रूप से सामुदायिक व्यवहार कहा जा सकता है।"

मैकाइवर और पेज के विचार, "जब कभी एक छोटे या बड़े समूह के सदस्य इस प्रकार रहते हैं कि वे इस अथवा उस विशिष्ट उद्देश्य में भाग लेते हैं, अपितु जीवन की सभी भौतिक दशाओं में भाग लेते हैं, तब हम ऐसे समूह का समुदाय कहते हैं।"

("Whenever the members of any group, small or large, live, together in such a way that they share, not this or that particular interest, but the basic condition of a common life, we call the group a community." **—Maclver and Page)**

बोगार्डस के विचार, "समुदाय एक ऐसा सामाजिक संगठन है, जिसमें कुछ मात्रा में हम की भावना होती है और वह एक निश्चित क्षेत्र में रहता है।"

("A Community is a social group with some degree of 'We feeling' and living in a given area." **—Bogradus)**

ग्रीन के विचार, "समुदाय व्यक्तियों का समूह है, जो निश्चित सीमा में रहते हैं और जिनके जीवन का एक-सा ढंग होता है।"

("A Community is a cluster of people living within a narrow territorial radius who share common way of life." **—Green)**

गिन्सबर्ग के विचार, **"समुदाय सामान्य जीवन जीने वालों का एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसमें सब प्रकार के असीमित, विभिन्न और जटिल संबंध होते हैं जो उस सामान्य जीवन के फलस्वरूप होते हैं जो उसका निर्माण करते हैं।"**

("The Community is to be understood a group of social being a common life including all the infinite veriety and complexity of relations which result from common life or constitute it." **—Ginsber)**

शिक्षा के बालक पर सामुदायिक-दृष्टिकोण से प्रभाव–बालक में समुदाय को देखते हुए उसकी शिक्षा पर हर क्षेत्र में प्रभाव पड़ता है।

1. सामाजिक-प्रभाव (Social Effects)–बालक जो कुछ भी सीखता है सर्वप्रथम समाज में रह कर ही सीखता है और समुदाय के आचार विचार, संस्कृति और सभ्यता सभी उसे प्रगति की ओर ले जाती है। वह सामाजिक प्रभावों से अछूता नहीं रह पाता और समाज द्वारा समय-समय पर हो रहे मेलों, व अन्य मनोरंजक गतिविधियों द्वारा अनेक नवीन बातें सीखता है और लाभान्वित होता है।

2. आर्थिक प्रभाव (Economical Effects)–समुदाय के आर्थिक प्रभाव का अर्थ है व्यवसायों व उद्योगों का लाभ। समुदाय के अनेकों लोग विभिन्न क्षेत्रों के अनेकों अलग-अलग व्यवसायों से संबंधित होते हैं और अपनी जीविका उपार्जन तो करते ही हैं साथ ही देश की पूँजी को बढ़ाते हैं। बालक आरम्भ से ही अपने आस-पास हो रही इस कार्य प्रणाली को देखता है और वह भी उद्योगों व व्यवसायों में रुचि बढ़ाकर कुछ भी सीखने की उत्सुकता दर्शाता है।

3. सांस्कृतिक प्रभाव (Cultural Effects)–प्रत्येक समुदाय की अपनी-अपनी अलग भाषा, रहन-सहन, तीज-त्यौहार होते हैं, जिन्हें बच्चा आसानी से अपने क्षेत्र व समुदाय में रहकर सीख जाता है।

4. राजनैतिक प्रभाव (Political Effects)–जिस देश की जैसी शासन पद्धति होती है, वैसी ही शासन पद्धति को वहां का बालक सहज रूप से अपना लेता है। उदाहरण के तौर पर भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के कारण आरम्भ से ही बालक अपने द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों से कार्य कराने व उनके द्वारा स्थापित आदर्शों व विचारों की कामना करने लगता है। इसी प्रकार रूस में बच्चों को प्रारम्भ से ही समाजवादी होने की शिक्षा दी जाती है।

5. साम्प्रदायिक प्रभाव (Communal Effects)–बालक में साम्प्रदायिक प्रभाव आना भी अवश्यम्भावी है, क्योंकि वह क्षेत्र, धर्म में उत्पन्न होता है। उसको उसी की अच्छाइयों के विषयों में बताया जाता है। दुःख तो तब होता है जब शैक्षिक संस्थाओं में भी साम्प्रदायिक भावनायें अपना घर बना लेती हैं। यह देश की उन्नति के लिए एक बाधा तो है ही, साथ ही यह उसे विनाश की कगार पर ला खड़ा करता है।

समुदाय में शिक्षा का दायित्व *(Role of Education in Community)*

समुदाय अथवा समाज की शिक्षात्मक भूमिका (Role of Community or Society in Education)–समुदाय की शिक्षा संबंधी भूमिका बहुत विस्तृत व बहुमुखी है। इसे नवीन रूप से चलाने के लिए और देश के लिए अच्छे नागरिक उत्पन्न करने के लिए शिक्षा की ओर अधिक से अधिक ध्यान देना होगा। क्रो और क्रो के शब्दों में, **"समुदाय बिना कुछ किए बिना बात की आशा नहीं कर सकता। यदि समुदाय चाहता है कि नवयुवक अच्छा बने व देश की सेवा भली प्रकार से करे तो उसे सभी शैक्षिक साधनों को जुटाना होगा जिनकी समुदाय को आवश्यकता है।**

1. नागरिकों और विद्यालय संचालकों के समन्वय में तालमेल (Relations Among the Citizens and School)–समुदाय और विद्यालय संचालकों के मध्य एक तालमेल व अच्छे मेल-मिलाप व सहयोग के द्वारा ही विद्यालय के वातावरण को सद्भावना से परिपूर्ण बनाया जा सकता है। क्रो और क्रो के अनुसार **"समुदाय के सभी नागरिकों को बुद्धिमानी के साथ विद्यालय संचालकों को पूर्ण सहयोग देना चाहिए।"**

2. विद्यालय कर्मचारियों की नियुक्ति (Appointment of School Workers)–कोई भी विद्यालय अच्छे कर्मचारियों के द्वारा नहीं चल सकता। आदर्श विद्यालय के लिए योग्य और कर्मठ कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। अध्यापकों के वेतन की ओर विशेष ध्यान देकर और योग्यतानुसार कर्मचारियों की नियुक्ति को ही प्राथमिकता देकर किसी विद्यालय व समुदाय का अच्छा स्कूल बनाया जा सकता है।

3. **शिक्षा की पूर्णतः आर्थिक व्यवस्था (Full Economic Aids to Education)**–बिना धन के कोई भी कार्य असम्भव है। धन के अभाव से शिक्षा का कोई भी कार्य सही रूप से पूरा नहीं हो सकता। अतः समुदाय द्वारा उदार अनुदानों का विद्यालय को लाभ प्राप्त होना चाहिए, जिससे विद्यालयों का कार्य सुचारु रूप से चल सके।

4. **औपचारिक शिक्षा पर नियंत्रण (Control on Formal Education)**–शिक्षा में पाठ्यक्रम का निर्धारण इस तरह से किया जाना चाहिए कि शिक्षा किताबी बनकर ही न रह जायें, क्योंकि शिक्षा एक ऐसा विस्तृत विषय है, जो केवल मात्र पुस्तकों के द्वारा ही पूरा नहीं हो पाता। अगर विषय-भाषा को संकुचित व एक-दायरे में बाँध दिया जाएगा तो शिक्षा का अर्थ अधूरा बन जाएगा और बालक एक दायरे में बंधकर एक नवीन समुदाय का निर्माण नहीं कर पाएगा।

5. **अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था (Arrangement of Informal Education)**– बालक जीवन भर कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। उसे केवल मात्र स्कूल के दायरे में बांध कर यह कहा जाये कि तुम यहीं सीखो या तुम्हें जो कुछ यहाँ शिक्षा दी जा रही है, वही तुम्हारे लिए काफी है तो ठीक नहीं होगा। व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। उसे विद्यालय के बाहर कहीं अधिक जानने और सीखने को प्राप्त होता है। अतः इसके लिए उसे ऐतिहासिक स्मारकों, संग्रहालयों, कलादीर्घाओं, संगीत, नाट्य कार्यक्रमों व ऐसे ही अनेक स्थानों का अवलोकन कराना चाहिए, जिनके द्वारा वह अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। अनौपचारिक शिक्षा विभिन्न प्रकार की स्लाइड एवं लघु चलचित्रों द्वारा भी प्राप्त कराई जा सकती है।

6. **समुदाय के विभिन्न लोक कार्यक्रम (Different Work of Community)**–समाज व समुदाय के विभिन्न धर्मों, जातियों व अन्य वर्गों के ऐसे विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक वर्ग एक दूसरे के करीब आ सके, कैम्पों द्वारा यह कार्यक्रम भली-भाँति चलाया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक का विकास न केवल घर के संकुचित वातावरण में होता है अपितु समुदाय के विशाल क्षेत्र में रहकर भी वो बहुत अधिक सीखता है। वह प्रभावशाली ढंग से अपनी आदतों, स्वभाव व सोच-विचार को बढ़ाता है और बोलने, रहन-सहन व बोलचाल की बातें भी समुदाय में सीखता है। समुदाय के वातावरण के द्वारा वह अनेक नई बातों को सीखता है। वह जैसा भी बनना चाहता है, उसी के अनुरूप अपने आपको उस विशेष व्यक्ति का उदाहरण सामने रखकर ढाल लेता है। चूँकि बच्चे अपने समुदाय के ढंगों को ही अपनाते हैं और अपने आस-पास के वातावरण से ही सब कुछ सीखते हैं। अतः यह कहना कदापि भी अनुचित नहीं होगा कि परिवार व विद्यालय तो शिशु को बहुत कुछ बनाता ही है, परन्तु समुदाय भी बच्चों को बनाने, सिखाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि समुदाय भी अन्य शिक्षा साधनों की ही भाँति शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

विद्यालयों और समुदायों में पारस्परिक संबंध (Relations between School and Community)–हम शिक्षा का स्तर तभी ऊँचा उठा सकते हैं जबकि हमारे स्कूलों व समुदायों के संबंध आपस में बहुत घनिष्ठ होंगे। इसके लिए हमें निम्नलिखित प्रयत्न करने होंगे।

(i) विद्यार्थियों के समय-समय पर शैक्षिक भ्रमण (Educational Tour) ले जाने होंगे, जिससे वे समुदाय के विषय में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें।

(ii) एन. सी. सी., राष्ट्रीय सेवा योजना (N.S.S.) स्काउटिंग आदि जैसे कैम्पों के आयोजन के द्वारा भी समुदाय का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) बालकों के माध्यम से रक्तदान, सफाई दिवस आदि रखकर भी कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।

(iv) पाठ्यक्रम केवल किताबों तक ही सीमित न हो अपितु उन्हें अनेक उपयोगी बातें, खेलों, मनोरंजनों, कठपुतलियों द्वारा सिखाई जायें।

(v) प्रौढ़ शिक्षा की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाए।

(vi) विद्यालयों में समय-समय पर सांस्कृतिक व रंगारंग कार्यक्रमों के आयोजन किए जायें।

(vii) साहित्यिक कार्यक्रमों में वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता व अन्य माध्यमों को स्थान दिया जाए।

(viii) अनेक विभिन्न राष्ट्रीय कार्यक्रमों के आयोजन के द्वारा छात्रों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया जाए।

(ix) समुदाय पर आई प्राकृतिक विपत्तियों के समय छात्रों के श्रम व धन के दान द्वारा जागृति लाई जाए।

(x) Book Bank के द्वारा गरीब बच्चों को मुफ्त पुस्तकें उपलब्ध कराई जायें। विभिन्न ट्रस्टों के माध्यम से छात्रवृत्तियों का भी अवसर दिया जाए।

(xi) ग्रामोद्धार सप्ताह, स्वच्छता सप्ताह, साक्षरता सप्ताह आदि का समय-समय पर आयोजन किया जाए।

(xii) अभिभावकों व अध्यापकों एवं अन्य विशिष्ट व्यक्तियों का यह कर्तव्य बन जाता है कि वो विद्यार्थी को समय-समय पर इस प्रकार के कार्य कराने की प्रेरणा देते रहें व साथ ही उन्हें सहयोग भी प्रदान करें।

इस प्रकार समुदाय शिक्षा का एक ऐसा माध्यम है, जिसमें प्रवन्धकों, अध्यापकों, अभिभावकों व छात्रों सभी का सहयोग व अनुभव आता है। कार्य करते हुए अनेकों प्रकार के मतभेद आते हैं। सभी का कर्तव्य यह बनता है कि अपने इन मतभेदों को स्नेह व प्रेमपूर्वक खत्म कर सहयोग से समुदाय के कार्यों को भली प्रकार चलाने में सहायक हों।

◆◆◆

2.11 विद्यालयों का परिवीक्षण तथा मूल्यांकन (Monitoring and Evaluation of Schools)

32. विद्यालयों के परिवीक्षण तथा मूल्यांकन का वर्णन कीजिए।
(Describe monitoring and evaluation of school.)

उत्तर–परिवीक्षण का अर्थ (Meaning of Monitoring)–शिक्षा के अन्तर्गत 'परिवीक्षण' शब्द बहुत प्राचीन है। परिवीक्षण प्रणाली का प्राचीन शिक्षा में विशेष महत्व रहा है। परिवीक्षक की प्रथा आज भी कक्षा में प्रचलित है। शिक्षा नीति (1986) में भी 'परिवीक्षण' शब्द का उपयोग किया है। परिवीक्षण का उपयोग शिक्षा नीति के अनुसार राष्ट्र तथा राज्य स्तर का शिक्षा के क्षेत्र में कार्यक्रमों, नीतियों तथा शोध कार्यों में किया है। राष्ट्र, राज्य के कार्यक्रमों का, राज्य अपने क्षेत्रीय तथा जिला स्तर के शैक्षिक कार्यक्रमों का निरीक्षण करे तथा उनमें सुधार एवं विकास करने का प्रयास करे। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर माध्यमिक विद्यालयों के कार्यक्रमों का निरीक्षण किया जाता है। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा कक्षा 1 से कक्षा 8 तक अर्थात् बेसिक शिक्षा के कार्यक्रमों का निरीक्षण किया जाता है। बेसिक शिक्षा के विकास एवं सुधार का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार निरीक्षण की क्रिया निरन्तर की जाती है।

परिवीक्षण का अर्थ निरीक्षण से भिन्न है। 'मानीटर' कम्प्यूटर के उपकरण में होता है। जो भी कार्यक्रम किया जाता है मॉनीटर पर उसको देखा जा सकता है और साथ-साथ उनमें त्रुटियों का सुधार किया जाता है ताकि कार्यक्रम का शुद्ध रूप तैयार किया जा सके। इस प्रकार परिवीक्षण का अर्थ है कार्यक्रम की गतिविधि का साथ अवलोकन करना तथा त्रुटि में सुधार करना। परिवीक्षण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

परिवीक्षण की विशेषताएँ–

1. परिवीक्षण की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली है।
2. परिवीक्षण में जवाबदेही को ध्यान में रखा जाता है।
3. परिवीक्षण की प्रक्रिया में आकलन निदान हेतु किया जाता है ताकि कमजोरियों का साथ-साथ उपचार किया जा सके।
4. परिवीक्षण में कार्यक्रमों का सम्पादन अपेक्षित दिशा में किया जा रहा है अथवा नहीं, इसका निदान करके साथ-साथ मार्गदर्शन भी किया जाता है।
5. परिवीक्षण का लक्ष्य कार्यक्रमों का नियंत्रण करना और उनमें सुधार करना होता है।
6. परिवीक्षण में नियन्त्रण के साथ आकलन, निदान हेतु किया जाता है और उसके लिए उपचारात्मक साधन उपलब्ध कराये जाते हैं।
7. प्राचार्य जब शिक्षकों को कार्यक्रमों का स्वतंत्र भार सौंप देता है तब परिवीक्षण का कार्य प्राचार्य का होता है।
8. परिवीक्षण में गहनता होती है क्योंकि इसमें निदान के साथ-साथ उपचार भी किया जाता है।

परिवीक्षण के लाभ *(Advantages of Monitoring)*

परिवीक्षण की भूमिका के निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. परिवीक्षण निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है इसलिए सभी शिक्षक तथा छात्र लगन से कार्य करते हैं।

2. परिवीक्षण की भूमिका से प्रशासन की कार्यप्रणाली प्रभावशाली होती है और शिक्षा में गुणवत्ता आती है।
3. राजकीय शिक्षा अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद को राज्य के शैक्षिक कार्यक्रमों का परिवीक्षण करना चाहिए तथा डाइट को भी परिवीक्षण की भूमिका निभानी चाहिए।
4. परिवीक्षण से विद्यालय में अनुशासन का अनुरक्षण होता है, विद्यालय वातावरण सीखने तथा सीखाने योग्य बनता है।
5. इसकी भूमिका से कार्यक्रमों का आकलन तथा निदान भी होता है और सुधार तथा उपचार हेतु सुझाव दिये जाते हैं।
6. परिवीक्षण प्राचार्य की जवाबदेही में सहायता करता है।
7. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद को देश के माध्यमिक विद्यालयों के कार्यक्रमों का परिवीक्षण करना चाहिए।
8. शिक्षा राज्य का विषय है अतः राज्य के विभिन्न स्तरों के अधिकारियों को अधीनस्थ कार्यक्रमों का परिवीक्षण करना चाहिए।
9. यदि शिक्षा के विभिन्न स्तरों के अधिकारी अपने अधीनस्थ कार्यक्रमों तथा योजना का परिवीक्षण करें तो शिक्षण की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है और नियन्त्रण भी कर सकते हैं।
10. यदि परिवीक्षण की प्रक्रिया राष्ट्रीय स्तर पर लागू की जाए तो सम्पूर्ण शिक्षा में गुणवत्ता लाई जा सकती है।

मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Evaluation)– मूल्यांकन शब्द का अर्थ मापन से भी कहीं अधिक व्यापक है, जिसमें गुणात्मक तत्त्वों को भी संख्यात्मक द्वारा बताया जाता है। मूल्यांकन के अन्तर्गत मापनों के सिद्धान्त, उनकी रचना मानकीकरण, प्रशासन एवं उनके माध्यम से प्राप्त परिणाम की व्याख्या आदि को सम्मिलित किया जाता है। मूल्यांकन से तात्पर्य है, पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित उद्देश्यों और मूल्यों के लिए प्रयासरत विद्यार्थियों की प्रगति की जांच करना। शिक्षा के उद्देश्यों, शैक्षणिक अनुभवों एवं मूल्यांकन में बहुत नजदीकी सम्बन्ध है। शैक्षणिक अनुभवों की योजना उद्देश्यों के आधार पर तैयार की जाती है। इन उद्देश्य की प्राप्ति हुई या नहीं इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए मूल्यांकन किया जाता है। अनुभवों के किसी भी स्तर पर इस बात का मूल्यांकन किया जा सकता है कि किस सीमा तक अनुभवों के माध्यम से वांछित परिवर्तन हो रहा है।

परीक्षण की अपेक्षा मूल्यांकन शब्द का अधिक व्यापक अर्थ है। मूल्यांकन विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं अध्यापक की शिक्षण पद्धति को अत्यधिक प्रभावित करता है। मूल्यांकन के द्वारा कौन-सी चीज अच्छी है या कौन-सी चीज बुरी है, के बारे में बताया जा सकता है। मूल्यांकन की मदद से न केवल विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में योग्यता का पता लगता है, बल्कि उनके व्यक्तित्व का किस सीमा तक विकास हुआ है, की जानकारी भी मिलती है। इसके द्वारा अध्यापक व उसकी शिक्षण विधियों की सफलता या असफलता के बारे में भी पता लगाया जा सकता है। निम्नलिखित परिभाषाएं मूल्यांकन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करती हैं–

1. क्यूलैन एवं हाना के अनुसार– **"मूल्यांकन ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा स्कूल में प्रगति करते हुए विद्यार्थियों के व्यावहारिक परिवर्तन के साक्ष्यों को एकत्रित करके उनकी व्याख्या की जाती है।"**
2. जॉन. यू. माईक्लिस के अनुसार–**"मूल्यांकन ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा इस बात का निश्चय किया जाता है कि लक्ष्यों की प्राप्ति कहां तक हुई? इससे शिक्षण के परिणामों को जांचने के लिए अध्यापक, बच्चों, प्रिंसिपल तथा अन्य स्कूल-सम्बन्धी व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त सभी प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं।"**
3. मोफेट के अनुसार–**"मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है और इसका सम्बन्ध विद्यार्थियों की केवल औपचारिक शैक्षणिक उपलब्धियों के साथ नहीं है बल्कि इसके क्षेत्र अधिक व्यापक हैं। यह व्यक्ति की भावनाओं, चिंतन तथा कार्यों से सम्बन्धित वांछित व्यावहारिक परिवर्तन के विकास में रुचि लेता है।"**
4. जेम्स एम. ली. के अनुसार–**"स्कूलों, कक्षाओं तथा स्वयं विद्यार्थी द्वारा निर्धारित शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति में विद्यार्थियों की प्रगति की जांच करना मूल्यांकन है। मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को और अधिक सिखाने के लिए मार्गदर्शन करना है और सत्य के प्रति उस प्रगति में सहायता प्रदान करना है। इस प्रकार मूल्यांकन नकारात्मक प्रक्रिया न होकर स्वीकारात्मक प्रक्रिया है।"**
5. रेमर्स एवं गेंज के अनुसार–**"मूल्यांकन के अन्दर व्यक्ति या समाज अथवा दोनों की दृष्टि में जो उत्तम है अथवा वांछनीय है, उसको मानकर चला जाता है।"**

6. टोरगेसेन तथा एडम्स के अनुसार–"मूल्यांकन का अर्थ किसी वस्तु या प्रक्रिया का मूल्य निश्चित करना है। इस प्रकार शैक्षिक मूल्यांकन से तात्पर्य है शिक्षण प्रक्रिया तथा सीखने की क्रिया से उत्पन्न उपयोगिता के बारे में निर्णय देना।"
7. डाडेकर के अनुसार–"मूल्यांकन क्रमबद्ध ढंग से हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त किया है।"
8. कोठारी कमीशन के अनुसार–"अब यह माना जाने लगा है कि मूल्यांकन एक अनवरत प्रक्रिया है, यह सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग है और शिक्षण लक्ष्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।"
9. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिषद् के अनुसार–"मूल्यांकन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त किये गये हैं। कक्षा में दिये गये अधिगम अनुभव कहां तक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं और कहां तक शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण किए गए हैं।"
10. वेस्ले के अनुसार–"मूल्यांकन एक समावेशित धारणा है, जो इच्छित परिणामों के गुण, महत्त्व, प्रभावशीलता का निर्णय करने के लिए समस्त प्रकार के प्रयासों एवं साधनों की ओर संकेत करती है। यह वस्तुगत प्रमाण आत्मगत निर्णयों का मिश्रण है। यह सम्पूर्ण एवं अन्तिम अनुमान है। यह नीतियों के रूप परिवर्तनों एवं भावी कार्यक्रम के लिए महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक पथ-प्रदर्शक है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण करने से पता लगता है कि मूल्यांकन सूचना प्राप्त करने तथा निर्णय के लिए प्रयोग की जाने वाली एक प्रक्रिया है। यह ऐसे परिवर्तनों का परीक्षण करता है, जो शिक्षण के परिणामों से छात्रों में उत्पन्न होते हैं, जिनमें अन्तर्गत व्यावहारिक परिवर्तन भी सम्मिलित होते हैं। मूल्यांकन शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें परीक्षण एवं उपलब्धि को सम्मिलित किया जा सकता है। मूल्यांकन शिक्षक के कार्य का आवश्यक अंग है, क्योंकि इसके बिना शिक्षण-कार्य सम्भव नहीं है। इसके द्वारा वह अपने छात्रों की रुचियों, योग्यताओं एवं उपलब्धियों को समझ लेता है। इसके अतिरिक्त वह अपनी शिक्षण विधियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके सुधार करते हुए स्वयं के शिक्षण के प्रभाव को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इस प्रकार उपरोक्त कार्यों को सफल करने के लिए मूल्यांकन की आवश्यकता होती है।

मूल्यांकन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य छात्रों के मानसिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास का मार्गदर्शन करते हुए उनकी शक्तियों एवं कमियों की जानकारी देना है। विभिन्न विषयों के शिक्षण का उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन करना होता है। इसके द्वारा छात्रों के व्यवहार में किस सीमा तक परिवर्तन हुए हैं, का भी पता चलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से आवश्यक सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं और इनको निर्णय लेने में भी प्रयोग किया जाता है।

विद्यालय का मूल्यांकन *(Evaluation of Schools)*

यह महत्वपूर्ण है कि विद्यालय की कार्यप्रणाली का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए जिससे विद्यालय की उपलब्धियों और सफलता का बोध हो सके। विद्यालय के मूल्यांकन से शिक्षक के निष्पादन का भी बोध होता है और छात्रों तथा शिक्षकों को एक पृष्ठ-पोषण मिलता है। मूल्यांकन में सामान्यतः शिक्षकों की प्रभावशीलता, छात्रों की उपलब्धियों को ही प्राथमिकता दी जाती है। परन्तु विद्यालय प्रणाली का आकलन नहीं होता है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रणाली विश्लेषण का उपयोग किया जाए जिससे विद्यालय की प्रणाली का आकलन और निदान दोनों ही किये जा सके। निदान से विद्यालय प्रणाली की कमजोरियों का बोध होता है और उनमें सुधार किया जा सकता है।

एक प्राचार्य को चाहिए कि विद्यालय के आकलन में उसकी प्रगति, प्रोन्नति, क्षमताओं तथा कठिनाईयों को महत्व दिया जाये। इस सम्बन्ध में निम्नांकित बिंदुओं को ध्यान में रखा जाए–

1. छात्रों के प्रश्न-पत्रों का अवलोकन किया जाए कि वे अधिक सरल तो नहीं है।
2. प्रश्नपत्र के अन्तर्गत समस्त पाठ्यक्रम से प्रश्न पूछे गये हैं या नहीं इसका अवलोकन किया जाए।
3. विद्यालय शिक्षा के अन्तर्गत मासिक परीक्षाएँ या साप्ताहिक परीक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे छात्रों के अध्ययन में निरन्तरता रहती है।
4. छात्रों की प्रगति का संचयी आलेख भी तैयार किया जाना चाहिए जिससे छात्रों को भी प्रगति का बोध होता रहे।